
इकाई 16 'राग दरबारी' के पात्र

इकाई की रूपरेखा

- 16.0 उद्देश्य
- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 'राग दरबारी' एक सामान्य चरित्रोपाख्यान
- 16.3 'राग दरबारी' के विशिष्ट पात्र
 - 16.3.1 वैद्य जी
 - 16.3.2 रंगनाथ और रुपन
 - 16.3.3 बद्री पहलवान और छोटे पहलवान
 - 16.3.4 रामाधीन भीखमखेडवी
 - 16.3.5 सनीचर
 - 16.3.6 लंगड़
 - 16.3.7 प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर
- 16.4 चरित्रों की प्रातिनिधिकता और अन्य चरित्र
- 16.5 'राग दरबारी' का चरित्र-विधान : रचनाकार की मूल्य-दृष्टि
- 16.6 सारांश
- 16.7 अभ्यास प्रश्न
 - खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

16.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु और उसके संरचना-शिल्प का अध्ययन कर लिया है। यहाँ आप उसके एक महत्वपूर्ण पक्ष चरित्र-विधान से संबद्ध विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं।

यह उपन्यास बहुत से चरित्रों के उपाख्यान से मिलकर निर्मित हुआ है। वैद्य जी, छोटे पहलवान, रामाधीन भीखम खेडवी के साथ अनेक उपकथाएँ किस प्रकार मिलकर उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाती हैं- इसका समुचित विवरण इस इकाई में दिया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास के विशिष्ट चरित्रों की विशेषताओं पर चर्चा कर सकेंगे;
- उपन्यास में आए चरित्रों की प्रातिनिधिकता और उन अन्य चरित्रों की विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे जो थोड़ी देर के लिए उपस्थित होकर भी अपने प्रातिनिधिक स्वरूप और महत्व को उद्घाटित कर जाते हैं; और
- 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में अपनायी गई उपन्यासकार की मूल्य-दृष्टि का उद्घाटन कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

अब तक आपने 'राग दरबारी' पर तीन इकाइयों का अध्ययन कर लिया है, जिनसे उपन्यास की समसामयिक पृष्ठभूमि के साथ ही उसकी अधिकांश अन्तर्बाह्य विशेषताओं से भी परिचित

हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान और पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। उपन्यास जैसी विस्तृत कथात्मक रचना की सफलता का एक बहुत बड़ा आधार पात्रों के चरित्र-चित्रण की सहजता, स्वाभाविकता और प्रामाणिकता है। लेकिन किसी रचना की सफलता उसकी सार्थकता का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती। अतः पात्र-रचना को लेकर, पात्रों के प्रति लेखकीय रुख-रवैया को लेकर सार्थकता का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि पात्र-रचना के पीछे निहित उद्देश्य लेखकीय दृष्टिकोण से भी जुड़ा रहता है।

कुछ आलोचकों ने 'राग दरबारी' में पात्रों की भीड़ का उल्लेख करते हुए लेखक द्वारा उनके समुचित विकास को न दिखा पाने का आरोप लगाया है। लेकिन यहाँ यह ध्यान में रखने की बात है कि 'राग दरबारी' एक सामान्य चरित्रोपाख्यान है। इसमें आए चरित्रों के क्रिया-कलाप ही नहीं, उनकी कथाएँ और बहुत सारी उपकथाएँ मिलकर उसे उपन्यास विधा का रूप देती है। इसके साथ ही 'राग दरबारी' एक यथार्थवादी उपन्यास है। यथार्थवाद का तकाजा है कि विवरण की सच्चाई के साथ प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का भी सच्चा चित्र प्रस्तुत किया जाए। इस दृष्टि से 'राग दरबारी' में स्वातंत्र्योत्तर भारत के बीस-पच्चीस वर्षों के तथाकथित सामाजिक विकास की परिस्थितियों में वैद्य जी, रंगनाथ, रुपन, प्रिसिपल साहब आदि के साथ ही सनीचर, लंगड़, ग्राण्टखोर कालिका प्रसाद, झूठी गवाही में कभी न उखड़ने वाले गवाह पं. राधेलाल आदि जैसे पात्रों की प्रातिनिधिकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

यहाँ जो अधिक विचारणीय है, वह यह है कि ये सभी पात्र मिलकर लेखक की किस मूल्य-दृष्टि का उद्घाटन करते हैं। कहीं वह अवमूल्यन की झाड़-झंखाड़ में ही तो पाठक को नहीं छोड़ देता? कहीं वह अपनी एतद्विषयक टिप्पणियों को ही तो अपनी मूल्य-दृष्टि का वाहक नहीं बना लेता? अतः 'राग दरबारी' की पात्र-योजना पर विचार करते हुए पात्रों की प्रातिनिधिकता के साथ ही लेखक की मूल्य-दृष्टि के औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार करना आवश्यक है। यह विचार हम इकाई के अंत में अपेक्षित विस्तार के साथ करेंगे।

16.2 'राग दरबारी' : एक सामान्य चरित्रोपाख्यान

'राग दरबारी' के संरचना-शिल्प पर विचार करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि इसका निर्माण अनेक कथाओं, उपकथाओं और लेखक की टिप्पणियों के संयोग से हुआ है। अतः इसे सामान्य चरित्रोपाख्यान की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः उपन्यास की स्थितियाँ और कथ्य वर्णन-क्रम से नहीं जीवन-क्रम से अर्थात् उन्हें जिए जाने के क्रम से संवेदित होकर उपस्थित हुए हैं। इसमें आए हुए प्रायः सभी पात्र अपनी अलग-अलग कहानी लिए हुए हैं। एक तरफ छंगामल इण्टर कॉलेज की गतिविधियों और उसके चुनाव की कहानी है, तो दूसरी तरफ कोऑपरेटिव यूनियन के गबन और उसके चुनाव की कहानी है और तीसरी ओर ग्राम पंचायत के चुनाव की कहानी है। शिवपाल गंज गाँव सभा के चुनाव के महत्व को रेखांकित करने के लिए रामनगर, महिपालपुर और नेवादा की ग्राम पंचायतों के चुनाव की अलग-अलग तीन कहानियाँ हैं।

उपन्यास में आए सभी पात्रों की अपनी-अपनी अलग कहानी है। रुपन, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, गयादीन, रामाधीन भीखम खेड़वी, जोगनाथ, सनीचर, लंगड़ आदि सभी पात्र अपनी-अपनी कहानी लिए हुए हैं। इनमें वैद्यजी और छोटे पहलवान अपने पूरे खानदान की कथा के साथ उपस्थित हैं। प्रिसिपल और खन्ना मास्टर की अलग ही कहानी है। सब मिलाकर 'राग दरबारी' एक बृहद चरित्रोपाख्यान के रूप में हमारे सामने आता है।

16.3 राग दरबारी के विशिष्ट पात्र

16.3.1 वैद्य जी

मुखौटों के बीच असलियत की पहचान को असंभव बनाने वाले वैद्य जी मात्र एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। वे गाँव के कुलपूज्य ब्राह्मण हैं, जान-माने वैद्य हैं, छंगामल इण्टर कॉलेज के मैनेजर हैं, कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं और अब गाँव-पंचायत को हथियाने के लिए लपक रहे हैं। खान-पान में विशुद्ध शाकाहारी और पोशाक में खदर की धोती, कुर्ता, सदरी, टोपी, चादर में वे भव्य मूर्ति के रूप में दिखायी देते हैं।

वैद्यजी अंग्रेजी हुकूमत के समय अंग्रेजों के विश्वास पात्र बनकर जापान से लड़ने के लिए सेना में भारतीयों की भर्ती कराते थे। हुकूमत का कृपा-पात्र बनकर जज की अदालत में ‘जूरी’ और ‘असेसर’ बनकर, दीवानी मुकदमों में जायदाद के सिपुर्ददार का काम करते थे। गाँव के जमींदारों में लम्बरदार का दर्जा उन्हें मिला हुआ था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में वे देशी शासकों के फर्मावरदार सेवक बनकर रातोंरात अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य बनाने लगे। इस प्रकार वे वर्तमान शासन-सत्ता के अनिवार्य स्तम्भ बन गए थे।

ऊपर से देखने में वैद्यजी का मुख्य पेशा वैद्यक था, जिसमें प्रकट रोगों के अलावा गुप्त रोगों की उनके पास अचूक दवा थी। अपने इस रूप में वे ‘जीवन से निराश नवयुवकों के लिए आशा का संदेश थे।’ लेकिन उनकी आमदनी का परोक्ष साधन छंगामल इण्टर कालेज की प्रबंध समिति, कोऑपरेटिव यूनियन की मैनेजिंग डायरेक्टरशिप और विकास कार्यों के लिए प्राप्त होने वाला सरकारी अनुदान, ऋण और तकाबियाँ थी। डिप्टी डायरेक्टर, स्कूल निरीक्षक और डिप्टी डायरेक्टर कोऑपरेटिव उन्हीं के इशारों पर काम करते थे। सभी संस्थाओं के चुनाव का परिणाम उनकी मुट्ठी में था। समाज में भ्रष्टाचार का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जो उनकी पहुँच के बाहर हो। छात्र नेताओं के प्रतिनिधि रूपन और बाहरी तथा गाँव के गुण्डों के सरदार बंदी पहलवान उनके पुत्र थे, बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि रंगनाथ उनके भाजे थे। थाने की पुलिस और थानेदार उनके इशारों पर चलने के लिए विवश थे। कालेज का प्रिंसिपल उनका चाकर था। गाँव और बाहर की राजनीति के लिए वे अटल स्तम्भ थे। बड़े-बड़े अधिकारियों को वश में करने के लिए उनके पास वीर्यपुष्टि की अचूक दवा के साथ ही देश के प्रसिद्ध ज्योतिषियों और बाबाओं का गहन सम्पर्क था। अपनी बेरोकटोक स्वार्थ सिद्धि के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को छिन्न-भिन्न करने वाली करामात उनके पास थी। सब मिलाकर वैद्यजी उस राजनीतिक-सांस्कृतिक संस्कृति के प्रतीक थे जिसके असत्य भार से देश का प्रजातंत्र और लोक-कल्याण की कामना त्राहि-त्राहि कर रही थी।

यह तो एक साक्षात् संस्था के रूप में वैद्यजी का बाहरी खाका है। ‘राग दरबारी’ में उनका आन्तरिक चरित्र भी स्थान-स्थान पर संकेतित हुआ है। इसके लिए कुछ उदाहरण अपेक्षित हैं। जाड़े की रात में लिहाफ को अच्छी तरह लपेटने के बाद भी जब जाड़ा उनकी हड्डियों को बेधने लगा तो उन्होंने “याद किया कि अकेले लेटने का विस्तार ज्यादा ठण्डा रहता है। इस याद के बाद यादों का एक ताँता सा लग गया।” इससे वैद्यजी के निजी क्रिया कलाप और आन्तरिक, चरित्र का संकेत मिलता है। रंगनाथ जब रूपन के प्रेम-पत्र की चर्चा करते हुए उससे कहता है कि इसको लेकर मामाजी बहुत नाराज हैं तो रूपन कहता है कि “वे क्या नाराज होंगे। जरा मुझसे बात करके देखो चौदह वर्ष की उम्र में विवाह होने और बड़ी माँ के मर जाने पर उनसे एक साल भी नहीं रुका गया, दूसरी शादी कर ली। यह सब तो किया कायदे से। और बेकायदे क्या किया वह भी सुनोगे।” बंदी पहलवान और वैद्यजी की झड़प में जब रूपन मध्यस्थता करता है तो वैद्यजी रूपन से कहते हैं कि “मुझे तुम्हारे आचरण की भी खबर है।” इस पर रूपन का जबाब है। “मुझे भी आपके आचरण की खबर है।” यहाँ

आचरण फँसने-फँसाने के प्रेम-प्रसंग के संदर्भ में आया है, अतः वैद्यजी के दुराचरण की ओर संकेत करता है। बद्री पहलवान के आचरण पर अपनी नाक कटकर गिरने की बात करते हैं तो बद्री तुरंत उत्तर देता है, “नाक वाली बात न करो। नाक है कहाँ? वह तो पंडित अंजुध्याप्रसाद के दिनों में ही कट गई थी।..... तुम कहते हो कि मैं बेला में फँस गया हूँ। तुम हमारे बाप हो, तुमको कैसे समझाया जाए। फँसना-फँसाना चिड़िमार का काम है। तुम्हारे खानदान में तुम्हारे बाबा अजुध्याप्रसाद जैसे रघुवंश की महंतारी से फँसे थे। इसे कहते हैं फँसना।” इससे स्वयं वैद्यजी ही नहीं, उनके खानदान तक की चरित्रहीनता उजागर होती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक ने वैद्यजी का जो व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया है, उसे देखकर पाठक भौतिक दृष्टि से अपने को उनसे श्रेष्ठ समझता है। नैतिकता की इस विजय को दिखाकर वैद्यजी को छोटा और कमजोर सिद्ध किया गया है, जिससे पाठक में आत्मविश्वास पैदा होता है कि वह वैद्यजी को पराजित कर सकता है। वैद्य जी का चरित्र प्रस्तुत करने में लेखक की यही मूल दृष्टि है। इस तरह वैद्यजी उपन्यास में नायक नहीं खलनायक हैं और पाठक को स्वयं नायक की भूमिका का निर्वाह करना है यह संदेश भी उपन्यास में परोक्ष रूप से दिया गया है।

16.3.2 रंगनाथ और रूपन

‘राग दरबारी’ में रंगनाथ को भारतीय बुद्धिजीवियों के रुग्ण प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का आरंभ और अन्त भी रंगनाथ के शिवपाल गंज में प्रवेश और पलायन से होता है। इसलिए वह शिवपाल गंज की समस्त गतिविधियों का द्रष्टा भी है। वह वैद्यजी का भाजा है, इस लिए सर्वत्र उसकी पूछ और सम्मान है। अठारह वर्षीय रूपन छंगामल इण्टर कालेज की दसवीं का छात्र-नेता और कॉलेज के मैनेजर वैद्यजी का पुत्र है। केवल पढ़ाई लिखाई को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों-कालेज, थाना कोआपरेटिव से लेकर गाँव के ‘गँजहों’ तक में उसका बोल-बाला है। उदंडता और अनुशासनहीनता के रोग से ग्रस्त इसे विद्रोही युवापीढ़ी का प्रतिनिधि बनाकर उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। कालेज के प्रिंसिपल से लेकर थानेदार तक उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते थे। उन पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, “उनकी इतनी इज्जत थी कि पूँजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुँचाकर किराया नहीं, आशीर्वाद माँगते थे।” उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहाँ का कालेज था, वहाँ उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और ज़रूरत पड़े तो स पर चढ़ भी सकते थे।”

रंगनाथ और रूपन में एक मूलभूत अन्तर था। ‘सारे मुल्क में फैले शिवपालगंज के अनुभव तक रूपन जैसा गँवार नागरिक उपन्यास के अंत में पहुँच पाता है। जबकि रंगनाथ जैसा गँवार नागरिक बहुत पहले ही (पृ. 63) पहुँच जाता है। बावजूद इसके रंगनाथ कोई खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं है और प्रायः तटस्थ द्रष्टा की भूमिका में ही रहना चाहता है। प्रिंसिपल के विरुद्ध, खन्ना मास्टर के प्रति उसे पूरी सहानुभूति थी। लेकिन कॉलेज की जाँच के लिए होने वाली बैठक में खन्ना के गुट के लोगों द्वारा मारपीट की बात आई तो वह उदासीन होने लगता है। वह सोचता है कि “स्वास्थ्य ठीक रहने के लिए शिवपालगंज की आबोहवा भले ही अच्छी हो, वहाँ की हवालात की इस मामले में ख्याति अच्छी नहीं।” कर्मक्षेत्र के प्रति एक बुद्धिजीवी की उदासीनता यहाँ व्यक्त हुई है।

रंगनाथ के विपरीत रूपन की सहानुभूति कर्म क्षेत्र में भी प्रवेश करती दिखायी देती है। वह कॉलेज की जाँच कमेटी की बैठक में किसी भी स्थिति के मुकाबले के लिए प्रिंसिपल और वैद्य जी के विरुद्ध पूरी तैयारी करता है। लेकिन अपने षड्यंत्र में सफल वैद्यजी जब बिना जाँच के ही खन्ना और मालवीय को पूर्व निर्मित त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश करते हैं तो वह पूरे आवेश के साथ अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है- ऐसा नहीं हो सकता।

आप जबरदस्ती इनसे इस्तीफा नहीं लिखा सकते। ये इस्तीफा नहीं देंगे।” रुपन इस्तीफे की कार्रवाई तो नहीं रोक पाता, लेकिन वैद्यजी की दहाड़ और गालियाँ सुनकर जब वहाँ से चलता है तो उसका व्यक्तित्व कुठित या लुचलुचाया हुआ नहीं, तिलमिलाया हुआ प्रतीत होता है। वह कुछ करने पर उत्तारू दिखायी देता है। इसका आभास वह बहुत पहले ही रंगनाथ के सामने दे देता है। जब रंगनाथ पूछता है कि क्या तुमने शराब पी है तो वह उत्तर देता है, “कभी न कभी तो शुरू करना ही पड़ता शिवपालगंज में रहना है तो इसी तरह रहा जाएगा।... यहाँ महात्मा गांधी बनने से काम नहीं चलेगा।”

रुपन के विपरीत रंगनाथ विरोध की पहली ही कोशिश में भरभरा कर उलट जाता है। उसके मन में पलायन का संगीत गूँजने लगता है- ‘रहना नहीं देस बिराना है।’ रंगनाथ को उपन्यासकार ने अधिकांश बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि के रूप में चुना है, जिस पर विवेकी राय ने एक अत्यन्त सार्थक टिप्पणी इस प्रकार की है, ‘ऐसा लगता है कि भारत का हर बुद्धिजीवी आज रंगनाथ की दयनीय तस्वीर बना हत बुद्धि होकर काँग्रेसी समाजवाद की उन चुनौतियों के भीतर-ही-भीतर जूझ रहा है, जो जाल की तरह उसके चारों ओर लगे हैं और जिनके जालिम मछुओं के सरदार रूप कोई वैद्यजी अपने खास रिश्तेदार पड़ रहे हैं तथा जिनसे निपटने का इससे सुकर मार्ग नहीं कि तमाशा भूमि छोड़कर चुप-चाप सरक जाएँ।’ इस टिप्पणी के प्रकाश में देखे तो पूरे ‘राग दरबारी’ में रंगनाथ की भूमिका बुद्धिजीवियों के एक प्रतिनिधि के रूप में ही प्रकट हुई है।

16.3.3 बद्री पहलवान और छोटे पहलवान

‘राग दरबारी’ के बद्री पहलवान वैद्य जी के बेटे हैं और छोटे पहलवान के गुरु हैं। उनके अखाड़े से निकले शिष्यों का एक बड़ा जाल आस-पास के गाँवों में फैला हुआ है। चोरी, उकैती, व्यभिचार आदि के मामलों में फँसे अपने गुण्डा-बदमाश शिष्यों के बचाव और जमानत के लिए उन्हें काफी श्रम करना पड़ता है। दुनिया में कल्ले के जोर (बाहुबल) को ही वे सबसे बड़ी ताकत मानते हैं। नैतिकता उनके लिए कल्ले के जोर की कमी की द्योतक है। अपने ‘पालक बालकों’ की रक्षा उनके लिए परम कर्तव्य था।

छोटे पहलवान बद्री के ‘पालक-बालक’ हैं। किन्तु इसके साथ ही वे एक खानदानी आदमी (हरामी) हैं। उन्हीं की जबानी उपन्यास में उनके खानदान का ठोस इतिहास प्रस्तुत हुआ है। उनके परदादा भोलानाथ ने अपने पिता के साथ और फिर अपने पुत्र गंगादयाल के साथ एक ठोस परम्परा कायम कर दी थी, जिसका पालन गंगादयाल के पुत्र कुसहर प्रसाद और उनके पुत्र छोटे पहलवान बड़ी ईमानदारी से कर रहे थे। “उनके यहाँ बाप-बेटे में हमेशा से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा था। प्रेम करना होता तो एक दूसरे से प्रेम करते, लाठी चलाना होता तो एक-दूसरे पर लाठी चलाते। जो भी अच्छा बुरा गुण उनके हाथ में था उसकी आजमाइश एक दूसरे पर ही किया करते।” छोटे जब तक पहलवान नहीं बने थे, तब तक अपने बाप कुसहर प्रसाद की लाठी का जबाब पत्थर के टुकड़ों से देते रहे, लेकिन जवान हो जाने पर बाप-बेटों ने शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया। इस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है। “अब वे उच्चकोटि के कलाकारों की तरह अपना अभिप्राय छपा, चिन्हों और बिम्बों में प्रकट करने लगे। उनके बीच में मारपीट की घटनाएँ भी कम होने लगीं और धीरे-धीरे उसने एक रस्म का रूप ले लिया, जो बड़े-बड़े नेताओं की वर्षगाँठ की तरह साल में एक बार, जनता की माँग हो या न हो, नियमित रूप से मनायी जाने लगी।”

छोटे पहलवान ने अपने बाप कुसहर प्रसाद को इसी रस्म अदायगी के तौर पर कुछ ज्यादा ही घायल कर दिया तो खून से लथपथ वे वैद्यजी की बैठक में शिकायत के लिए आते हैं। इस घटना से खिन्न होकर रंगनाथ कहता है - “ताज्जुब है, इस तरह के लोगों (छोटे पहलवान) को बद्री दादा अपने पास बैठा लेते हैं।” इस पर बद्री पहलवान लापरवाही से जवाब देते हैं, “ये कुसहर भी किसी से कम नहीं। इनके बाप गंगादयाल जब मरे थे तो यह उनकी अर्धी तक नहीं

निकलने दे रहे थे कि घाट तक घसीटकर डाल आएँगे।'' आगे चलकर जब बद्री उस समझाते हैं कि अपने बाप को इस तरह नहीं मारना चाहिए तो छोटे उत्तर देता है, "गुरु, साला बाप जैसा बाप हो, तब तो एक बात भी है।'' इस पर सनीचर समझाते हुए कहता है कि "आखिर कुसहर ने तुम्हें पैदा किया है, पाला-पोसा है।'' इस पर छोटे भुनभुनाकर कहता है, "कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरखास्त दी थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।'' इससे छोटे पहलवान का पूरा चरित्र पाठक के सामने आ जाता है। इस प्रकार का गँवार अक्खड़पन उनके चरित्र की विशेषता है, जिस का परिचय उपन्यास में स्थान-स्थान पर मिलता है।

छोटे पहलवान जैसा अक्खड़पन बद्री पहलवान में भी है जिसे आप वैद्य-बद्री-विवाद में देख चुके हैं। बावजूद इसके बद्री पहलवान वैद्यजी की शक्ति के एक दृढ़ स्तंभ हैं। कालेज की प्रबंध समिति और कोआपरेटिव के गबन की समस्याएँ जब गंभीर रूप धारण कर लेती हैं, तो बद्री उसे अपने बाएँ हाथ का खेल बताकर वैद्यजी को संतुष्ट कर देते हैं। कोआपरेटिव इंस्पेक्टर डिप्टी डाइरेक्टर, खन्ना मास्टर आदि की समस्याओं को वे कल्ले के बल पर सुलझाने का जो नुस्खा पेश करते हैं, उससे वैद्यजी संतुष्ट हैं। आगे बद्री, बिना बीच में आए, अपने बाहुबल पर वायदे का निर्वाह करते हैं। इस प्रकार बद्री और छोटे पहलवान दोनों ही अपनी खानदानी परम्परा को अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ाते हैं।

16.3.4 रामाधीन भीखमखेड़ा

रामाधीन शिवपालगंज से लगे एक गाँव भीखमखेड़ा के रहने वाले थे। यह गाँव अब कुछ झोपड़ों, माल विभाग के कागजात और रामाधीन की पुरानी शायरी में ही सुरक्षित था। बचपन में काम-धाम की तलाश में वे कलकत्ता पहुँच गए थे। वहाँ एक व्यापारी के यहाँ पत्र वाहक का कार्य करते हुए बाद में उसके साथ मिलकर कारोबार शुरू कर दिया। अंत में उस कारोबार के मालिक बन बैठे। कारोबार अफीम का था। कच्ची अफीम कलकत्ते के व्यापारियों के पास पहुँचाने की आदत उनके पास थी। पैसा अच्छा था। लेकिन गैरकानूनी काम होने से वे पकड़े गए और दो साल की सजा हो गयी। सजा के बाद वह काम चला पाना संभव न देख वे पुनः भीखमखेड़ा वापस आ गए। अपने बचे-खुचे पैसे से एक घर बनवाया और थोड़ी जमीन लेकर खेती करने लगे। तभी ग्रामीण क्षेत्रों में नयी पंचायतें बनीं। अपने चचरे भाई को प्रधान बनवाकर गाँव पंचायत की जमीन के पट्टे का शुल्क स्वयं लेने लगे और भाई को गबन के मुकदमे में जेल जाने के लिए छोड़ दिया।

गाँव में टिक पाने के बाद रामाधीन ने गाँव के लड़कों को कौड़ी की जगह ताश से जुआ खेलने की शिक्षा दे दी। उनके मकान के सामने छप्पर के बंगले में एक तरफ गाँव के नौजवान ताश खेलते और दूसरी तरफ भांग घुटती थी। धीरे-धीरे वैद्यजी की फितरत और आधुनिक सभ्यता के असर से वे भी गुटबंदी के शिकार हुए। ग्राम-पंचायत की आड़ में कोआपरेटिव यूनियन की ओर उनका थोड़ा झुकाव तो था ही, खन्ना-मालवीय जैसे मास्टरों के दुख-दर्द से प्रेरित होकर छंगामल इण्टरकालेज की प्रबंध समिति में भी उन्होंने प्रवेश पा लिया था। कुछ हो-न-हो कोआपरेटिव इंस्पेक्टर और डिप्टी डाइरेक्टर एजुकेशन के माध्यम से वे वैद्यजी की निद्रा में किंचित खलल डालने में भी सफल हो गए थे। बावजूद इसके उपन्यास में वे एक निष्क्रिय, गुटबाज़ के रूप में ही आते हैं। उनकी सक्रियता का क्षेत्र अफीम विक्रय, जुआरियों के साथ लेन-देन, और गाँव पंचायत की जमीन के पट्टे तक ही सीमित रहती है।

16.3.5 सनीचर

'राग दरबारी' उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र सनीचर है, जिसका मुख्य काम वैद्यजी की बैठक में सुबह-शाम भंग घोटना था। उपन्यासकार ने आरम्भ में ही उसका परिचय इस प्रकार दिया है - "एक दुबला-पतला आदमी गन्दी बनियायन और धारीदार अण्डर वियर पहने बैठा

था।... उसका नाम मंगल था, पर लोग उसे सनीचर कहते थे। उसके बाल पकने लगे थे और आगे के दाँत गिर गए थे। उसका पेशा वैद्यजी की बैठक पर बैठे रहना था।” इसके साथ ही सनीचर पृथ्वी पर वैद्यजी को एकमात्र आदमी और स्वर्ग में हनुमान जी को एक मात्र देवता मानता था। वैद्यजी का अत्यधिक कृपा-पात्र होने के कारण वह छोटे-मोटे लोगों के मामलों में दखल भी दे देता था।

रामाधीन भीखम खेड़वी ने जिस तरह अपने चचरे भाई को गाँव का प्रधान बनाकर उल्लू सीधा किया, उससे वैद्यजी परिचित थे। अतः सनीचर को गाँव-सभा का प्रधान बनाने का उन्होंने निश्चय कर लिया। वैद्यजी के दरबार के अनुभवों का लाभ उठाकर सनीचर भी बड़े उत्साह से प्रधानी के स्वप्न को साकार करने में लग जाता है। अपने चुनाव से एक महीना पहले ही गाँव के प्रसिद्ध ग्राण्टखोर कालिका प्रसाद को शहर ले जाता है। वहाँ ए.डी.ओ. (कृषि विकास अधिकारी) से मिलकर सहकारी खेती की स्कीम की स्वीकृति ले आता है। वह इसका खुलासा वैद्यजी के सामने इस प्रकार करता है - “गुरु जी हुआ यह है कि अब इस गाँव में एक कोआपरेटिव फार्म खुलेगा।... पच्छिम की तरफ वाले ऊसर पर फार्म लहकेगा। ऊसर होने से कोई हरज नहीं। कागज-पत्तर वाला काम बालक वाले सँभालेंगे। कागज-पत्तर के मामले में वे तहसील-थाने वालों के भी बाप हैं। कहो तो आसमान में कोआपरेटिव बना दें। यहाँ तो धरती की बात है।” सनीचर की इस कारस्तानी से वैद्यजी बाग-बाग हो जाते हैं।

चुनाव अधिकारी के लिए एक सस्ती घड़ी का इंतजाम कर वैद्यजी ने महिपालपुर वाली पद्धति से सनीचर को ठेलठाल कर प्रधान के पद पर आसीन कर दिया। तमंचे के बल पर वैद्यजी के सर्वसम्मत मैनेजर चुने जाने के नाटकीय प्रभाव को झेलने के बाद सनीचर की विजय पर आहत रंगनाथ की मनोदशा का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, “सनीचर की विजय के दिन उसने बहुत कुछ सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्यजी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दीख पड़े।” भारतीय प्रजातंत्र के रूप में साक्षात् सनीचर की उपस्थिति द्वारा उपन्यासकार ने भारत की लोकतंत्रीय चुनाव व्यवस्था पर गहरा कटाक्ष किया है। अपने इस रूप में सनीचर एक प्रतिनिधि पात्र बन गया है, जो एक विशेष सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इसे रचनाकार के उद्देश्य से सीधे जुड़ा हुआ पात्र कह सकते हैं। सारे देश में ग्राम-प्रधान के रूप में सनीचरों का एक लम्बा-चौड़ा जाल बिछा हुआ है, जो चुनावी दृष्टि से भारतीय प्रजातंत्र की नींव को डावाँडोल किए हुए हैं।

16.3.6 लंगड़

लंगड़ ‘राग दरबारी’ का एकमात्र ऐसा पात्र है, जिसे रचनाकार के साथ ही समूचे पाठक समुदाय की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई है। उपन्यास के आरंभ में लंगड़ का रेखा-चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, “माथे पर कबीर पंथी तिलक, गले में तुलसी की कण्ठी, आँधी पत्ती झेला हुआ दड़ियल चेहरा, दुबली-पतली देह, मिर्जई पहने हुए। एक पैर घुटने के पास से कटा था, जिसकी कमी एक लाठी से पूरी की गई थी। चेहरे पर पुराने जमाने के उन ईसाई संतो का भाव, जो रोज अपने हाथ से अपनी पीठ पर खींचकर सी कोड़े मारते हों।”

लंगड़ को दीवानी मुकदमे के सिलसिले में एक पुराने मुकदमे की नकल लेनी थी। इसके लिए नकलनबीस ने पाँच रुपये माँगे तो लंगड़ ने कहा कि रेट दो रुपए है। इस पर दोनों में हुज्जत हो गयी। नकल नबीस ने प्रतिज्ञा कर लिया कि बिना रिश्वत के वह नकल कायदे से देगा और लंगड़ ने भी कण्ठी छूकर प्रतिज्ञा की कि वह भी कायदे से ही नकल लेगा। अपने ‘सत्र’ की लड़ाई, ‘घरम’ की लड़ाई वह जारी रखता है। अपने गाँव से पाँच मील दूर शिवपालगंज की कचहरी का वह चक्कर लगाता रहता है। पर किसी न किसी गलती को निकालकर नकल की कार्रवाई अधूरी पड़ी रहती है। उसे पूरा विश्वास है कि नकल एक न एक दिन अवश्य मिलेगी। लेकिन अंत में जब नकल ले नहीं पाता तो बड़ी वेदना से कहता है कि “नकल की दरखास्त फिर से न लगा दूँ?” यहाँ उसकी यातना का चरम बिन्दु साकार हुआ है।

वस्तुतः 'राग दरबारी' के लंगड़ की स्थिति 'मैला आँचल' के वामनदास का स्मरण दिलाती है। एक छोटे से गांधीवादी आदर्श के लिए पूरा संघर्ष करते हुए वामनदास आत्मबलिदान कर देता है। लंगड़ रिश्तत न देने के आदर्श की रक्षा के लिए अपने को न्यूँछावर कर देता है। कथाकार लंगड़ को एक भयानक पोस्टर के रूप में कचहरी में लटका देता है, जो हजार-हजार जिह्वाओं से वहाँ की काली करतूतों की कहानियाँ घोषित करता है। वह इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि देश का आम नागरिक 'लंगड़' बनकर न्यायालयों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती लूट-खसोट से त्राहि-त्राहि कर रहा है। इस प्रकार सनीचर के माध्यम से जहाँ उपन्यासकार ने भारतीय चुनाव व्यवस्था की विकृतियों का यथार्थ उद्घाटित किया है, वहीं लंगड़ के माध्यम से भारतीय न्याय-व्यवस्था के यथार्थ का नंगा नाच प्रस्तुत किया है। दोनों ही एक दूसरे से भिन्न समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं।

16.3.7 प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर

श्री लाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' के लिए शिक्षा-संस्था के रूप में छंगामल इण्टर कालेज को प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें आए प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा व्यवस्था के यथार्थ को पूरी तरह उद्घाटित करते हैं। लेकिन शिक्षा व्यवस्था का पूरा वृत्त कालेज मैनेजर वैद्यजी को मिलाकर ही पूरा होता है। प्रिंसिपल साहब वैद्यजी की बैठक में नित्य उपस्थित होकर माँग मानते हैं, उनकी चापलूसी करते हैं और खन्ना तथा उसके गुट के मास्टरों की शिकायत करते हैं। उनकी सबसे बड़ी योग्यता कालेज में गुटबंदी, मारपीट, गाली-गलौज, गुण्डई, नोटिस बरखास्तगी, आतंक, नंगई आदि की समुचित व्यवस्था है। उन्होंने अध्यापकों पर 107 का मुकदमा कर उन्हें चोर-डाकुओं की कतार में खड़ा कर दिया है। वैद्यजी ने प्रिंसिपल को हर तरह के काम के लिए पूरी छूट दे रखी है। साथ ही बंदी और छोटे पहलवान उनके लिए सुरक्षा कवच का काम करते हैं।

खन्ना मास्टर आम अध्यापक समुदाय के प्रतिनिधि हैं, जिन्हें प्रिंसिपल की ज्यादातियाँ स्वीकार नहीं हैं। अपने सक्रिय विरोध के कारण विद्यार्थियों की ओर भी वे समुचित ध्यान नहीं दे पाते। वे किसी तरह वैद्यजी के पुत्र छात्र नेता रूपन और रंगनाथ की सहानुभूति जुटा लेते हैं। इसी के सहारे प्रिंसिपल और उनके गुट के विरुद्ध मोर्चाबन्दी करते हैं। लेकिन वैद्यजी जैसे घाघ के सामने उनकी चलती नहीं। डिप्टी डाइरेक्टर, एजुकेशन की जाँच के बहाने बैठक रखकर वे गहरे षड्यंत्र द्वारा खन्ना और मालवीय को बंदी और छोटे पहलवान के कल्ले के जोर पर पहले से तैयार त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर देते हैं।

प्रिंसिपल और खन्ना के विवाद के माध्यम से उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा-व्यवस्था के कुत्सित यथार्थ का उद्घाटन सफलतापूर्वक किया है। अध्यापकों की नियुक्ति प्रिंसिपल और मैनेजर के रिश्तेदारों में से की जाती है। दूने वेतन पर अध्यापकों से हस्ताक्षर कराकर आधा वेतन दिया जाता है। जो ज्यादा ही सिर उठाते हैं, उन्हें खन्ना, त्रिपाठी, मालवीय आदि की तरह शिक्षा संस्थाओं से बाहर कर दिया जाता है। विद्यार्थी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर अध्यापकों की गुटबंदी के शिकार बनते हैं। विद्यालयों को मिलने वाले सरकारी अनुदान शिक्षा-कार्य में न लगकर प्रिंसिपल और मैनेजर की जेब गरम करते हैं। ये सारे तथ्य प्रिंसिपल और खन्ना के विवाद में 'राग दरबारी' में बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत किए गए हैं। इनके चरित्र के माध्यम से शिक्षा-व्यवस्था का प्रामाणिक यथार्थ पाठक के सामने आता है।

16.4 चरित्रों की प्रतिनिधिकता और अन्य चरित्र

ऊपर विशिष्ट पात्रों के चरित्र-चित्रण के माध्यम से आपने देख लिया है कि 'राग दरबारी' के अधिकांश चरित्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा एक समुदाय विशेष के प्रतिनिधि के रूप में आए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पात्र भी उपन्यास में चित्रित हुए हैं, जो अपनी वर्गीय विशेषताओं को ही उद्घाटित करते हैं। इनमें जोगनाथ, गयादीन, पं. राधेलाल, कालिका प्रसाद

के साथ ही शत्रुघ्न सिंह, रिपुदमन और उनके भाई सर्वदमन सिंह, ठा. बलराम सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

‘राग दरबारी’ के पात्र

जोगनाथ का सर्वप्रथम परिचय उपन्यास में शराब के नशे में धुत्त सर्फरी बोलने वाले के रूप में होती है। जब रात में फर्जी गश्त पर लगे थानेदार और सिपाहियों को आवाज देता है कि “कर्फोन है सर्फाला” (कौन है साला), थानेदार द्वारा गोली चलाने की धमकी दी जाती है तो उसका उत्तर है, “मर्फर गर्फए सर्फाले, गर्फोली चर्फलाने वाले (मर गए साले गोली चलाने वाले)।” वैसे वह गाँव में दीवारों पर इशतहार रंगने का काम करता है, लेकिन उसकी प्रसिद्धि एक जुआरी, शराबी और माने हुए चोर के रूप में है। शाम को अंधेरा होते ही वह शिवपालगंज के बाहर दो-चार साथियों को मिलाकर राहजनी करता है और ठेके पर जमकर शराब पीता है। गयादीन के घर में चोरी के समय वह रंगे हाथों पकड़ा नहीं जाता, अतः फर्जी मुठभेड़ में थानेदार द्वारा कैदी बनाया जाता है इसमें छोटे पहलवान पुलिस का मुखबिर बनकर बड़े छल के साथ जोगनाथ का पक्ष लेता है और उसे बरी करा देता है। उसे वैद्यजी का आदमी माना जाता है। उपन्यास में वह गाँव के असामाजिक तत्वों के प्रतिनिधि के रूप में आया है।

गयादीन जाति के बनिया थे, जिनका पेशा सूद खोरी था। उनकी दुकान पर ऋण के रूप में रुपयों की लेन-देन के साथ कपड़े की भी बिक्री भी होती थी। कोआपरेटिव यूनियन भी सूद पर रुपये देती थी और कपड़े की दुकान करती थी। वैद्यजी के साथ अच्छे सम्बन्ध के कारण गयादीन और कोआपरेटिव में शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व था। और कालेज ककी प्रबंध समिति के भी वे उपाध्यक्ष थे। पैसे और इज्जत के कारण थाना-पुलिस, स्थानीय एम.एल.ए. और जिला बोर्ड के टैक्स कलेक्टर की उन पर कृपा थी। आचार-विचार में वे इतने सात्विक थे कि उड़द की दाल तक नहीं खाते थे - कारण उससे क्रोध आने की आशंका थी। उनकी सबसे बड़ी कमजोरी उनकी स्वस्थ, सुन्दर और गृहकार्य में निपुण बेटी बेला थी। उस पर रुपयन और बद्री दोनों भाइयों की नजरें थी। खन्ना और उनके गुट के अध्यापकों के बहकावे में न आकर वे गुटबंदी में शामिल नहीं हुए। अपनी बेटी को लेकर हो रही बदनामी से आजिज आकर वे उसका विवाह शहर में करने के बाद गाँव छोड़कर शहर में बसने चले गए। उन्हें उपन्यासकार ने निरामिष सूदखोर महाजनों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है।

पंडित राधेलाल ‘कभी न उखड़ने वाले’ गवाह के रूप में गाँव में प्रसिद्ध थे। उन पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, “जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमे में फैसला दे सकता है, कोई भी वकील किसी भी मुकदमे की वकालत कर सकता है, वैसे ही पं. राधेलाल किसी भी मामले में चश्मदीद गवाह बन सकते थे।” लेकिन गाँव के लोगों की छींटाकशी, तानों आदि को देखते हुए ऐसा लगता है कि उनके बारे में अधिकतर लोगों की राय अच्छी नहीं थी। स्वयं लेखक द्वारा प्रस्तुत उनके रेखाचित्र से भी यही लगता है, “एक पुरोहितनुमा बुढ़ा, पिचके गाल। खिचड़ी दाढ़ी। बिना बटन का कुरता। सिर पर अस्त व्यस्त गांधी टोपी... माथे पर लाल चंदन का टीका। गले में रुद्राक्ष की माला।” लेकिन बावजूद इसके पं. राधेलाल जब किसी पूर्वी जिले में जाकर एक चौकीदार की ब्याहता को पुनर्विवाह कर घसीट लाए तो गँजहों के बीच ‘कभी न उखड़ने वाले गवाह’ के साथ ही ‘कभी न चूकने वाले मर्द’ के रूप में भी विख्यात हो गए। इससे स्पष्ट है कि उपन्यास में पं. राधेलाल गाँव-समाज के एक झूठे गवाह, मक्कारी, फरेब को ही अपना व्यवसाय बनाने वाले टिपिकल चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इन्होंने पूरे इलाके में अपनी शिष्य परंपरा कायम कर दी है, जिसका प्रमाण वैद्यनाथ है, जो जोगनाथ की सजा वाले मामले पुलिस का मुखबिर बन कर उपस्थित होता है।

कालिका प्रसाद - ‘सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीने वाले’ व्यक्ति थे।

ग्रांटखोर के रूप में इनकी ख्याति बेमिसाल थी। इस पेशे में उनके तीन सहायक थे - स्थानीय एम.एल.ए., खदर की पोशाक और कर्ज की वसूली के समय कार्रवाई रोकने की कार्रवाई का

कौशल। मुर्गी-पालन, चमड़ा कमाने, खाद के गड्ढों को पक्का कराने, बिना धुँए का चुल्हा लगवाने, नये ढंग का संडास बनवाने के लिए मिलने वाले सभी अनुदानों को हजमकर सबकी कारगुजारी की समुचित रिपोर्ट इन्होंने भेज दी थी। इनके पाँच बीघे खेत अकेले पचासों तरह के कर्जे और तकाबियों की जमानत संभाले हुए थे। अनुदान या कर्ज देने वाली किसी नयी स्कीम के विषय में योजना आयोग के सोचने भर की देर थी कि उन्हें सारी सूचना मिल जाती थी। इसके लिए वे पहले से ही अर्जी तैयार रखते थे। इन्हीं कालिका प्रसाद को सनीचर प्रधान बनने से एक महीना पहले ही अपना सहायक बनाता है। केवल सहायक ही नहीं बनाता, वरन् ए.डी.ओ. से मिलकर सहकारी खेती की स्कीम का सौदा पक्का कर आता है, जिसका उल्लेख सनीचर के चरित्र-चित्रण के संदर्भ में पहले ही किया जा चुका है। सनीचर जिस विस्तार से कालिका प्रसाद के कारनामों का वर्णन वैद्यजी के सामने करता है। उससे योजना आयोग की बहुमुखी विकास योजनाओं की असलियत का भण्डाफोड़ पूरी तरह हो जाता है। सब मिलाकर देखें तो पं. कालिका प्रसाद को उपन्यासकार ने ग्रांट खोरों ही नहीं ऋण-चोरों के प्रतिनिधि के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

शत्रुघ्न सिंह, रिपुदमन सिंह और उनके भाई सर्वदमन सिंह का उल्लेख रामनगर चुनाव-पद्धति के संदर्भ में किसी ग्राम पंचायत के चुनाव की विशेषता दिखाने के लिए हुआ है। इनमें वकालत की उपाधि धारण कर गाँव की राजनीति में आए सर्वदमन की जीविका का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, “उनके पास दस गैस बत्तियाँ थी। जो शಾದियों के मौसम में किराए पर चलती थी। साथ ही उनके पास दो बंदूकें थी, जो डकैतियों के मौसम में किराए पर चलती थी। कुल मिलाकर सर्वदमन को इतना मिल जाता था कि इत्मीनान से ग्रामीण राजनीति का संचालन कर सकें।” ठा. बलराम सिंह उपन्यास के कथा-पटल पर केवल एक बार कॉलेज के चैयरमैन के चुनाव पर उपस्थित होते हैं। उनके आगमन पर टिप्पणी करते हुए एक लड़का कहता है, “अब कोई वैद्यजी का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। ठाकुर बलराम सिंह आ गए।” उनके दबदबे में आकर विरोधी सदस्य वापस चले जाते हैं और वैद्यजी का चैयरमैन के पद पर सर्वसम्मत चुनाव हो जाता है। उपर्युक्त पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने इस तथ्य को उजागर किया है कि अब गाँव पूरी तरह गुण्डों और बदमाशों की गिरफ्त में आ चुका है और किसी भी क्षेत्र के विकास में आम किसान जनता की कोई भागीदारी नहीं रह गयी है।

16.5 ‘राग दरबारी’ का चरित्र-विधान : रचनाकार की मूल्य-दृष्टि

‘राग दरबारी’ के चरित्र चित्रण और चरित्रों की प्रातिनिधिकता पर विचार करते हुए हमने उनकी योजना के पीछे निहित उद्देश्य पर भी विचार किया है। अब हम चरित्र-विधान में निहित रचनाकार की मूल्य-दृष्टि पर विचार करेंगे। वैसे तो मूल्य दृष्टि उद्देश्य के साथ ही जुड़ी होती है लेकिन हम उद्देश्य को ही प्रत्यक्ष रूप से मूल्य-दृष्टि की संज्ञा नहीं दे सकते। ‘राग दरबारी’ में रचनाकार की मूल्य-दृष्टि का संधान करते हुए जो सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न होती है वह है नायक का अभाव। हमें ‘गोदान’ और ‘रंग भूमि’ में प्रेमचंद की मूल्य-दृष्टि का संधान करने में कोई दिक्कत नहीं होती, क्योंकि उसे वे नायक होरी और सूरदास के आदर्शों के साथ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं। ‘राग दरबारी’ में केवल नायक का अभाव ही नहीं, वरन् वैद्यजी जैसे खलनायक की भूमिका को विस्तार दिया गया है। इसके साथ ही अन्य अधिकांश पात्र भी दुष्ट चरित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं। इसके लिए हम यह कहकर छुट्टी नहीं ले सकते कि श्रीलाल शुक्ल एक सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्यकार हैं। अतः अपने चरित्र-विधान के लिए उन्हें इस प्रकार की नीति अपनानी पड़ी। इस सम्बन्ध में रैल्फ फाक्स ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है, “उपन्यासकार निश्चय ही सामाजिक व्यंग्य को अपनी कथा-वस्तु बना सकता है। सच तो यह है कि इसने विश्व के अनेक महानतम उपन्यासों को जन्म दिया है, किन्तु व्यंग्यकार भी - बल्कि इस मामले में तो व्यंग्यकार का नाम सबसे पहले लेना चाहिए - मानव चरित्र को अपनी कृति का केन्द्र बनाने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं है।” (उपन्यास और लोक जीवन, पृ. 79)

उपर्युक्त तथ्यों और मान्यताओं के आधार पर ‘राग दरबारी’ के चरित्र-विधान में लेखकीय मूल्य-दृष्टि का संधान किस प्रकार करें? इसके लिए हमें उपन्यासकार के उद्देश्य का ही सहारा लेना पड़ेगा। उसने स्वातंत्र्योत्तर न्याय-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, प्रजातांत्रिक व्यवस्था, जन कल्याण-व्यवस्था आदि की जन विकृतियों के उद्घाटन के उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास की रचना की है, उसमें इसी प्रकार के चरित्रों की गुंजाइश रही है। अतः पाठक समुदाय पर एक बड़ी जिम्मेदारी लेखक की ओर से डाल दी गयी है। उसे स्वयं खलनायक वैद्यजी के स्थान पर नायक की भूमिका या दुष्ट पात्रों के स्थान पर सद्पात्र की भूमिका में आना पड़ेगा। यदि पूरा उपन्यास पढ़ने से हमें ऐसा नहीं लगता कि लेखक प्रजातंत्र का विरोधी है, समता, न्याय और भाई-चारे की याचना का विरोधी है, लोकहित का विरोधी है, तो निश्चित रूप से मानना पड़ेगा उसकी चेतना जनतांत्रिक है। उपर्युक्त मूल्यों से उसका जुड़ाव है और जीवन में उनकी प्रतिष्ठा को अपना आग्रह-अनुरोध बना चुका है। यही नहीं, वरन् वैद्यजी से लेकर तमाम दुर्जन पात्रों के अन्तर्बाह्य चरित्र को उद्घाटित कर उसने उनके नैतिक पतन को रेखांकित किया है। व्यंग्यकार की इस भूमिका को उद्घाटित करने के लिए जोनाथन स्विफ्ट की रचना धर्मिता पर विचार करते हुए एलूनाचास्की ने लिखा है कि व्यंग्यकार शत्रु के नैतिक अधःपतन को दिखाकर हमें उससे श्रेष्ठ सिद्ध करता है। शत्रु को उपहासास्पद बनाकर उस पर हमारी नैतिक विजय की घोषणा करता है। व्यंग्य की विजय नैतिक होती है- वास्तविक नहीं। व्यंग्य के सामाजिक उद्देश्य पर विचार करते हुए इकाई-14 में विस्तार से आप को इस तथ्य से अवगत कराया गया है।

व्यंग्य की उपर्युक्त भूमिका को ध्यान में रखकर देखें तो नैतिकता, इन्सानियत, सदाचार, समता, न्याय, भाई-चारे की भावना पर आधारित मूल्यों से श्रीलाल शुक्ल की सहमति दिखायी देती है। ‘राग दरबारी’ के चरित्र-विधान में भी उनकी यही मूल्य-दृष्टि परोक्ष रूप से व्यक्त हुई है। वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में संवैधानिक दायरे में रहकर ही वे अपनी मूल्य-दृष्टि को व्यवस्थित करते हैं। उनमें पूँजीवादी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के अतिक्रमण की वह मूल्य-दृष्टि नहीं है, जो हमें नागार्जुन, हरिशंकर परसाई आदि में मिलती है। ये व्यंग्यकार सुधार के स्थान पर आमूल सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता को भी रेखांकित करते हैं। अतः यहाँ केवल मूल्य-दृष्टि का ही नहीं विश्व-दृष्टि का भी प्रश्न उपस्थित हो जाता है। मूल्य-दृष्टि इसी विश्व-दृष्टि से संचालित और नियन्त्रित होती है। इस आधारभूत तथ्य के प्रकाश में देखें तो श्रीलाल शुक्ल और नागार्जुन या हरिशंकर परसाई की विश्व-दृष्टि में बुनियादी अंतर दिखायी देता है। यह अंतर प्रगतिशील-परिवर्तन की भी प्रखर चेतना के अभाव से श्रीलाल शुक्ल में आया है। अतः मूल्य-दृष्टि के लिए चरित्र-विधान में पात्रों के साथ सलूक की बात प्रमुख हो जाती है। कभी-कभी वे उनकी विकृतियों के चित्रण में आत्मघाती आनन्द लेने लगते हैं। यह तथ्य चरित्र-विधान के साथ ही उनके अन्य व्यंग्यात्मक चित्रों में भी मिलता है। इसे उनकी सीमा के रूप में देखा जा सकता है।

16.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने ‘राग दरबारी’ की पात्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम राग दरबारी का एक सामान्य चरित्रोपाख्यान के रूप में निरीक्षण-परीक्षण किया गया है। इसमें आप देखें तो बहुत सारे पात्रों की कथाएँ-उपकथाएँ मिलकर उपन्यास के बृहद कलेवर का निर्माण करती है।

इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है, ‘राग दरबारी’ के विशिष्ट पात्रों का चरित्र-चित्रण। इसके अन्तर्गत मुख्य पात्रों के चरित्र की अन्तर्बाह्य विशेषताओं पर विचार करते हुए, उनकी योजना में लेखक के उद्देश्य को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न हमने किया है।

इकाई का तीसरा पहलू है, पात्रों की प्रातिनिधिकता का विवेचन-विश्लेषण। इसके साथ ही कुछ गौण पात्रों के चरित्र पर भी इसी के अन्तर्गत विचार गया है। इस प्रक्रिया में विशेष रूप से यह

दिखाने का प्रयास किया गया है कि 'राग दरबारी' के अधिकांश पात्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा एक सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि बनकर आए हैं।

इकाई का चौथा बिन्दु 'राग दरबारी' के चरित्र विधान में उपन्यासकार की मूल्य-दृष्टि का संधान है। विभिन्न पात्रों की योजना के पीछे निहित लेखकीय मूल्य-दृष्टि का उद्घाटन करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इस कार्य में उसे किस सीमा तक सफलता मिल सकी है। व्यंग्य शैली के अत्यधिक आग्रह के कारण लेखक कहीं चुहलबाजी या चमत्कार-प्रदर्शन का शिकार तो नहीं हुआ है। इस दृष्टि से हमने उसकी क्षमताओं सीमाओं को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है।

16.7 अभ्यास प्रश्न

1. 'राग दरबारी एक सामान्य चरित्रोपाख्यान है' - इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
2. 'राग दरबारी' के वैद्यजी का चरित्र-चित्रण करते हुए बताइए कि उनके माध्यम से लेखक ने अपने किस उद्देश्य की पूर्ति की है।
3. सनीचर की चरित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए बताइए कि लेखक ने उसे किस समुदाय का प्रतिनिधि-बनाकर प्रस्तुत किया है।
4. 'लंगड़ के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय न्याय-व्यवस्था पर एक करारी चोट की है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. 'राग दरबारी' के अधिकांश पात्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा किसी समुदाय गत विशेषताओं का अधिक प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। इस कथन की सार्थकता पर सोदाहरण विचार कीजिए।
6. 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में लेखक ने अपनी किस मूल्य-दृष्टि का परिचय दिया है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न : ले. शेरजंग गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली-2
2. व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र : ले. मलय; साहित्यवाणी, इलाहाबाद-6
3. सृजनशीलता का संकट : ले. नित्यानन्द तिवारी ; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. तद्भव विशेषांक (अंक - 1) : अखिलेश

परिशिष्ट : श्रीलाल शुक्ल और 'राग दरबारी'

जीवन परिचय

सहज किस्सागो और मनोविनोदी प्रवृत्ति के व्यक्ति के रूप में श्रीलाल शुक्ल की पहचान लोगों की स्मृति में अंकित है। इसे उन्होंने अपने अनगढ़ जीवनानुभव से पोषित किया। शुक्ल जी का जन्म 1925 ई. में लखनऊ के पास एक गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपने गाँव के विषय में लिखा है "इसके दो पक्ष हैं। जमींदारी वाले दिनों की व्यवस्था में जकड़ा हुआ गाँव जिसमें अलग-अलग जातियों की अपनी-अपनी परम्पराएँ अपने तौर तरीके थे। किसी भी तरह की वर्ग चेतना नहीं थी। हर आदमी की अपनी हैसियत मुकर्रर थी। गंदी गलियाँ, बच्चे, रास्ते आदि थे, एक ओर एक भी पक्का मकान नहीं था। दूसरा पक्ष परिवेश और प्रकृति का था। गाँव के तीन ओर खेत थे और विस्तीर्ण जंगल थे। चौथी ओर लखनऊ जानेवाली सड़क थी और घनी अमराइयों का सिलसिला था। आज जब उस गाँव के बारे में सोचता हूँ तो वह एक ओर कई अद्भुत व्यक्तियों और दूसरी तरफ अपनी प्राकृतिक मोहकता के कारण याद आता है।" श्रीलाल शुक्ल के इन वाक्यों में अपने ग्राम और अंचल के प्रति उनका प्रेम दिखाई देता है। अपनी मिट्टी के लिए यह सम्मान उनमें आज भी बना हुआ है। वे अपने गाँव और रिश्तेदार से मिलने के लिए वहाँ अभी भी जाते रहते हैं। श्रीलाल शुक्ल की पारिवारिक पृष्ठभूमि निम्न मध्यवर्गीय थी। उनके दादा एक अध्यापक थे। वे उर्दू फारसी और संस्कृत के अच्छे जानकार थे। उनके पिता ने स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की थी परंतु हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की सामान्य जानकारी उन्हें थी। शुक्लजी ने पढ़ाई लिखाई का संस्कार विरासत में पाया था। अपनी स्कूली शिक्षा को समाप्त कर वे उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने इलाहाबाद गए। वहाँ से उन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की। इसी समय उन्हें वहाँ की साहित्यिक संगोष्ठी 'परिमल' में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती, केशव चंद्र वर्मा और सर्वेश्वर आदि का उन्हें सान्निध्य प्राप्त हुआ। शुक्लजी एम.ए. और कानून की पढ़ाई करना चाहते थे, परंतु आर्थिक विपन्नता के कारण उनके लिए यह संभव नहीं हुआ। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने नौकरी की तलाश की। वे उत्तर प्रदेश प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा पास कर डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हुए। सन् 1983 ई. में इस नौकरी से सेवा मुक्त होकर, अभी वे लखनऊ में साहित्य सृजन कर रहे हैं।

सरकारी सेवा के दौरान उत्तर प्रदेश के कई शहरों में उन्हें कई प्रकार के खटूटे मीठे अनुभव हुए। अधिकारी होने के कारण उनके जनसंपर्क का दायरा बड़ा रहा होगा। इसलिए समाज के अनेक प्रकार के पात्रों से भी उनका परिचय हुआ होगा। मुख्यमंत्री, विधायक, पुलिस, जज, वकील, छात्र, शिक्षक और दलाल आदि अनेक प्रकार के समूह को उन्हें गहराई में अनुभव करने का अवसर मिला। उन्होंने 'राग दरबारी' तथा अन्य कई उपन्यासों में इस प्रकार के लोगों की यथार्थ रूप में रचना की है। इसके पीछे उनके स्वानुभूत अनुभव की सच्चाई छिपी हुई है। उनके जीवन के संबंध में सबसे विचारणीय बात यह है कि वे प्रशासनिक व्यस्तता के बीच न केवल साहित्य रचते रहे अपितु प्रशासनिक अधिकारी से अपने सर्जक व्यक्तित्व को दूर भी रखा। शीला सिंधु के शब्दों में "श्री लालजी का लेखक और अफसर एक मकान की दो मंजिलों में रहने वाले अलग-अलग व्यक्तियों की तरह हैं। शायद ही कभी उन्होंने लेखक की चर्चा करते हुए यह आभास दिया हो कि वे कुछ अलग, कुछ विशिष्ट, कुछ निराले किस्म के इंसान हैं। इसलिए उनमें अपने लेखन के प्रति निर्मम रूप से तटस्थ हो जाने की क्षमता है। वे स्थितियों, व्यक्तियों यहाँ तक कि खुद अपने आपको भी एक बाहरी व्यक्ति की तरह अलग खंड हो कर देख सकते हैं। अपने लेखन का मूल्यांकन कर सकते हैं।" इस प्रकार तटस्थ और निर्मम होकर अपना मूल्यांकन करना किसी भी रचनाकार के लिए बौद्धिक चुनौती और गौरव का विषय हो सकता है।

साहित्यिक योगदान

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के उपन्यास और व्यंग्य लेखन में श्रीलाल शुक्ल का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने उपन्यास को सामान्य पाठक के लिए पठनीय और रोचक बनाया। यह उनके लेखन की मौलिक विशेषता है और लोकप्रियता का महत्वपूर्ण आधार भी। लोकप्रियता के आवेश में कहीं भी वे उपन्यास को सतही और बाजारू नहीं बनाते हैं। इसमें समाज की नई वास्तविकता को पहचानने की क्षमता है। 'सूनी घाटी का सूरज' (1957) और 'अज्ञातवास' उनके प्रारंभिक उपन्यास हैं। 'सूनी घाटी का सूरज' में गाँव के एक गरीब और साधनहीन बच्चे रामदास की आत्मकथा को चित्रित किया गया है। रामदास का जीवन वहाँ से शुरू होता है जहाँ अभाव, निर्धनता और गरीबी के सिवा कुछ भी नहीं है। फिर पढ़नी लिखना और सम्मान से जीने का सवाल ही नहीं उठता है। परंतु रामदास ने अपनी जिजीविषा के बल पर इस चुनौती को स्वीकार किया। उसने पढ़ाई-लिखाई के द्वारा अपने सपने को साकार करना चाहा, परंतु सिफारिश नहीं होने के कारण वह लगातार झटका खाता रहा। वास्तव में इस उपन्यास में नेहरू युग के आदर्श की छाया में एक नौजवान की वास्तविक स्थिति का पता मिलता है। यह युग की विषमता पर पाठक को सोचने पर विवश करता है। इस उपन्यास में विद्यार्थियों की प्रतिभा का शोषण, अयोग्य व्यक्ति का योग्य पद पर नियुक्ति होना, सामंती शोषण आदि कई सवाल को लेकर लेखक ने बड़े ही सार्थक ढंग से उठाया है। 'सूनी घाटी का सूरज' में शोषण का आधार सामंती है, परंतु 'अज्ञातवास' उपन्यास में नौकरशाही शोषण को सामने रखा गया है। इस प्रकार सत्ता के बदलते चेहरे के साथ शोषण का स्वरूप भी बदला। उपन्यास में लेखक ने गहराई से इसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। 'अज्ञातवास' में मध्यवर्ग की दोहरी नैतिकता पर लेखक ने प्रश्नचिह्न लगाया है। शोषण के बदलते चेहरे को श्रीलाल जी ने देखा था इसलिए उसे उभारने में उन्होंने बड़ी कुशलता का परिचय दिया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रजनीकांत नौकरशाह है। वह घूस के पैसे से ऐय्याशी करता है। धन जमा करना और उससे विलासिता का संसाधन जुटाना उसकी जिंदगी का लक्ष्य है। लेकिन उपन्यास के अंत में उसे हार्ट अटैक हो जाता है। 'आदमी का जहर' अपराध कथा पर आधारित रचना है। एक संवेदनशील कथाकार होने के नाते श्री लालजी ने इस चलता और बाजारू विषय के माध्यम से भद्र समाज की नंगी वास्तविकता को रोशनी में लाने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास अपने गठन में अत्यंत रहस्यात्मक है।

'पहला पड़ाव' (1987) उपन्यास की कथा तीन भागों में विभक्त है। मजदूर, ठेकेदार - इंजीनियर और सत्ता के प्रतिनिधि तथा शिक्षित बेरोजगार उपन्यास के तीन बिंदु हैं। विलासपुर के मजदूर, जो रोजगार की तलाश में अपने परिवेश से बाहर निकलते हैं, उनकी कठिनाइयों का इसमें यथार्थ वर्णन है। ये मजदूर मिस्त्री ठेकेदार, इंजीनियर और धन सेठों के सामने अपने को अनजान और असहाय अनुभव करते हैं। ठेकेदार, इंजीनियर और सेठ मजदूरों का शोषण करते हैं। उपन्यास में शोषण के समानांतर शोषक का समाज है जो विकास के नाम पर जनता की संपत्ति को लूट रहा है। इंजीनियर, ठेकेदार और सत्ता के प्रतिनिधियों के बीच साँठ-गाँठ से ठेकेदार रात में सरकारी गोदाम से माल उठवा लेता है। इंजीनियर साहब जमकर पैसा बनाते हैं, मुअत्तल होते हैं फिर स्थगन - आदेश से लेते हैं। उपन्यास में शोषक और शोषित के विभाजन को लेखक ने स्पष्टता से पहचाना है।

'राग दरबारी' (1968) श्रीलाल शुक्ल की प्रतिनिधि रचना है। इसमें उन्होंने कुछ प्रतीकों के माध्यम से सत्ता की वास्तविकता को समझाने का प्रयत्न किया है, शिवपालगंज के कुछ संस्थानों की यथार्थ स्थिति से परिचय कराकर उसके क्रमशः भ्रष्ट और मूल्यविहीन होते जाने की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। लोकतंत्र, शिक्षा, ग्राम पंचायत न्यायालय आदि शब्दों के वजन को उन्होंने अपने भोगे गए अनुभवों के आधार पर तौलने की कोशिश की है। 'मकान' (1972) उपन्यास में एक मध्यवर्गीय पात्र नारायण बनर्जी की कहानी है जो दफ्तर में नौकरी करता है और साथ ही सितारवादक भी है। वह रहने के लिए एक मकान की खोज में है। मकान की निरंतर और

अविराम खोज उसके भटकन को सांकेतिक करती है। उसे जब मकान मिलता है तो उसका आकर्षण खत्म हो चुका होता है। मकान नहीं रहने के कारण उसे होटल में रहना पड़ता है, जहाँ उसकी कामुक प्रवृत्ति उत्तेजना की हद तक पहुँचती है। वह अपने पत्नी और बच्चे को छोड़कर सिम्मी और श्यामा से अवैध संबंध बनाता है श्यामा नारायण बनर्जी की रमणी, सचिव, सखी और शिष्या है। इसलिए उसके और नारायण बनर्जी के संबंध भी अत्यंत जटिल हैं। आकर्षण और पलायन का द्वंद्व उसके चरित्र को नाटकीय बना देता है। उपन्यास के अंत में उसकी हत्या हो जाती है।

‘बिष्णुपुर का संत’ (1998) एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास की राजनीति भूदान आंदोलन से संबंधित है। उपन्यास में कुँवर जयंती प्रसाद सिंह को फोकस में रखा गया है। सत्ता से चिपकने के बाद भोग विलास की लालसा उनके बूढ़े शरीर को लगातार परेशान करती है। वे सुविधा, सुरक्षा, सौन्दर्य, यश और कीर्ति को एक साथ पाना चाहते हैं। उनका चरित्र पाखंडी धूर्त और कामुक व्यक्ति के रूप में उभरता है। कुँवर जयंती प्रसाद को अस्सी साल की उम्र में सुंदरी और जयश्री के सुंदर शरीर स्वप्न में याद आते हैं। उनमें उसे भोगने और पाने की बेहद उत्कंठा है। जीवन की संध्या में विश्रामपुर में आश्रमवास करना उनकी राजनैतिक असफलता की असहाय मनोवेदना को प्रकट करता है। वे अपनी परिस्थिति से मजबूर होकर आश्रमवास का निर्णय लेते हैं। उपन्यास के अंत में वे आत्महत्या कर लेते हैं परंतु त्रासदी यह है कि उस पर कोई शोक प्रकट करने वाला शेष नहीं है। इस उपन्यास के माध्यम से भूदान आंदोलन के संदर्भ में राजनीतिक व्यभिचार का एक क्रूर सच पाठक के सामने लेखक ने उपस्थित किया है। राजनीतिक मानवीय व्यभिचार का यह क्रूर सत्य मानवीय निष्ठा और गरिमा को संदेहास्पद बनाता प्रेरित होता है।

उपन्यास के अतिरिक्त कहानी एवं व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में भी श्रीलाल शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। ‘यह घर मेरा नहीं’ (1962) में दो पीढ़ी के अंतराल और उसके तनाव को अभिव्यक्त किया गया है। ‘उमराव नगर’ (1985-88) ऐसा गाँव है जहाँ विकास का कोई कार्यक्रम नहीं पहुँचा है, पर जिसे नियोजित विकास के लिए चुना गया है। ‘लुढ़कता पत्थर’ उनकी चर्चित कहानी है, जिसमें उन्होंने मध्यवर्ग की मानसिकता को व्यंग्य का निशाना बनाया है। ‘मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ’, ‘कुछ जमीन कुछ हवाएँ’ तथा ‘आओ बैठ लें कुछ देर’ उनके चुनिंदा व्यंग्य निबंध संग्रह हैं। उनके व्यंग्य समाज की संवेदनहीनता पर कटाक्ष करते हैं। वस्तुतः उनकी व्यंग्य रचनाएँ दो प्रकार की हैं - एक में वे पाठक को हँसी में सराबोर करते चलते हैं और दूसरे प्रकार के व्यंग्य निबंधों में समाज में चल रहे घातक षड्यंत्र को बेनकाब करते प्रतीत होते हैं।

कब लिखी गई

रागदरबारी सन् 1968 में प्रकाशित हुई थी। इसे सन् 1970 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया था। सन् 1992 में गिलियन राइट ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया, जो बाद में ‘पेंगुइन’ से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के लिखे जाने और छपने के बीच बड़ा लंबा अंतराल है। इसका कारण वही नौकरशाही व्यवस्था है जिसकी आलोचना उपन्यास में की गई है। श्रीलाल शुक्ल सरकारी अधिकारी थे, इसलिए उपन्यास के प्रकाशन के लिए उन्हें विभाग से अनुमति लेना आवश्यक था। परंतु विभाग के अधिकारियों ने इसमें कई तरह के ऐतराज जाहिर किए, जिससे उपन्यास के प्रकाशन में विलम्ब हुआ। अंत में श्रीलाल शुक्ल ने जब नौकरी छोड़ने की धमकी दी तब कहीं जाकर यह व्यवधान समाप्त हुआ। और उपन्यास छपकर पाठक वर्ग को उपलब्ध हो सका।

अंतर्वस्तु

इस उपन्यास का शीर्षक लेखक ने रागदरबारी रखा है। ‘राग दरबारी’ संगीत का एक राग और धुन है, जो मध्यकालीन सामंतों के दरबार में उन्हें रिझाने के लिए गाया जाता था। लेखक ने राग दरबारी के माध्यम इस संदेश को संप्रेषित करना चाहा है कि सत्ता के साथ जुड़े रहने के लिए एक खास किस्म के लोचदार व्यक्तित्व की जरूरत होती है, जो अवसर के

अनुकूल नया तेवर अपनाता है। उपन्यास के आरंभ में ही व्यवस्था के उस चरित्र को लेखक एक ट्रक के बिंब के माध्यम से रेखांकित करता है। उपन्यास का आरंभिक वाक्य है - "वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।" हर प्रकार की सत्ता और व्यवस्था मनुष्य के शोषण पर आधारित है। ट्रक का संपूर्ण बिंब लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करता है। लोकतंत्र में पुलिस, व्यवस्था का एक अंग है। पुलिस की मनोवृत्ति में मध्यकालीन सामंती अंदाज है। थाने का जिक्र करते हुए उपन्यासकार लिखता है "आराम कुर्सी ही नहीं सभी कुछ मध्यकालीन था। तख्त, उसके ऊपर पड़ा हुआ दरी का चीथड़ा, कलमदान, सूखी हुई स्याही की दवातें, मुड़े हुए कोने वाले मटमैले रजिस्टर - सभी कुछ शताब्दी पुराने दिख रहे थे।" उपन्यास के तीसरे भाग में छंगमल विद्यालय इंटर कॉलेज का जिक्र आता है जो भ्रष्ट राजनीति और सत्ता के व्याभिचार की रंगभूमि है। शिक्षा की शोचनीय हालत के लिए लेखक, शिक्षक और प्रिंसिपल दोनों को संयुक्त रूप से दोषी मानता है। उद्देश्यहीन शिक्षा, व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा व्यक्तित्व के लिए घातक होती है उसका उदाहरण छंगमल विद्यालय के शिक्षक और छात्र हैं। इस विद्यालय की बागडोर जिन मठाधीश के हाथ में है, वे तथाकथित रूप से सेवक हैं। अंग्रेजों के जमाने में अंग्रेजों के लिए, देशी हुकूमत के दिनों में देसी हाकिमों को लिए श्रद्धा दिखाते हैं। अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए वे हर प्रकार के कार्य कर सकते हैं। फिर वे चाहे नीतिपूर्ण हों अथवा अनीतिपूर्ण। विद्यालय के प्रिंसिपल इन सत्ताधारियों के चाटुकार है। वे वैद्यजी के साथ बैठकर भांग पीते हैं और स्कूल की राजनीति पर चर्चा करते हैं। वे अवसर को देखकर फायदा उठाने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इसी क्रम में लंगड़ का अवांतर प्रसंग आता है। वह हमारी न्याय व्यवस्था पर ही नहीं अपनी ज़िद्दी मानसिकता पर भी व्यंग्य करता प्रतीत होता है।

ग्रामीण और शहरी रिक्शावाला के प्रसंग के बहाने लेखक ने आधुनिकता के विषय में प्रचलित भ्रम को समझाने का प्रयत्न किया है। वास्तव में हमारे समाज में शहरी आधुनिक समझे जाते हैं जबकि यह यथार्थ नहीं है। उपन्यासकार ने शहरी और ग्रामीण मानसिकता को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है। इसलिए गाँव के प्रति भी उसमें उस प्रकार की मोह या आकर्षण नहीं है। निर्मम होकर लेखक ने ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को उजागर किया है।

इसी संदर्भ में दुरबीन सिंह के प्रसंग का उल्लेख करना उचित होगा। दुरबीन सिंह के प्रसंग के माध्यम से लेखक ने गाँव समाज के नैतिक पतन का संकेत दिया है। ग्रामीण लोगों में अपराधी को उदात्त हीरो की तरह स्वीकार करने की मानसिकता है। यह हमारे समाज की पतित मनोवृत्ति को सूचित करता है। पढ़े लिखे लोगों में प्रचलित औपनिवेशिक मानसिकता की भी लेखक आलोचना करता है।

इस संदर्भ में रंगनाथ शिवपालगंज में रंगनाथ का टूरिस्टों के समान आगमन होता है। टूरिस्ट गाँव के समाज को आत्मीयता से महसूस नहीं कर पाते हैं। वे कुछ चीजों को देखकर अपना विचार निर्धारित कर लेते हैं। लेखक इस निर्धारित विचार श्रेणी से असहमत है। कुछ विदेशी जो भारत के बारे में अपना निश्चित मत अभिव्यक्त करते हैं लेखक उससे सहमत नहीं है। भारत के विषय में फैली प्राच्यवादी अवधारणा का भी वे विरोध करते हैं। लेखक कुछ प्रसंगों के माध्यम से इस प्रकार के खोखले विचार की हँसी उड़ाता है। कॉलेज में मैनेजर के चुनाव के प्रसंग के बहाने लेखक लोकतंत्र की वास्तविकता को पाठक के सामने रखता है।

कॉलेज की सालाना बैठक में मैनेजर और प्रिंसिपल के चुनाव की योजना वैद्यजी ने बनाई। गयादीन की चुनाव के विषय में धारणा है कि चुनाव से कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता, केवल सत्ता का हस्तांतरण होता है। लोकतंत्र की यह सबसे बड़ी विसंगति है। लेकिन कॉलेज के इस चुनाव में सत्ता हस्तांतरण का भी प्रश्न नहीं उठा। बाहुबल से वैद्यजी ने प्रतिरोधी

आवाज को चुप कर दिया। छोटे पहलवान बलराम सिंह और बंदी पहलवान ने ऐसा इंतजाम किया कि चुनाव किसी संघर्ष के बिना संपन्न हो गया।

वैद्यजी के प्रभुत्व को सिद्ध करने के लिए लेखक ने जोगनाथ की गिरफ्तारी की योजना को उपन्यास का महत्वपूर्ण संदर्भ बनाया है। जोगनाथ गयादीन के घर चोरी के जुर्म में गिरफ्तार होता है। परंतु उसके खिलाफ पुलिस के पास एक भी सबूत नहीं हैं। लेकिन फिर भी नया दरोगा उसे गैर जमानती के तहत छोड़ने से इनकार करता है। इस प्रकार वह वैद्यजी की बातों की प्रकारांतर से अवहेलना भी करता है। उस दरोगा का शिवपालगंज थाने से स्थानांतरण हो जाता है। यह वैद्यजी के सत्ता की ताकत है, जो बिना कुछ बोले अपने अपमान का प्रतिशोध ही नहीं लेते हैं अपितु अपना वर्चस्व भी स्थापित करते हैं।

शिवपालगंज के ग्राम प्रधान के चुनाव की तैयारी हो रही है। जनता हर उम्मीदवार को वोट देने का आश्वासन देती है। वास्तव में उसमें इतनी ताकत ही नहीं है कि प्रत्याशियों के मुँह पर वोट नहीं देने की बात कह सके। शिवपालगंज में चुनाव जीतने की तीन तरकीबें हैं—एक रामनगर वाली, दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुर वाली। रामनगर वाली तरकीब में ग्राम प्रधान पुलिस की सहायता से सत्ता हथियाता है। नेवादावाले तरीकों में धर्म को आधार बनाया जाता है। महिपालपुर वाली तरकीब में चुनाव अधिकारी के सहयोग से चुनाव जीता जाता है। सनीचर किसी भी तरीके से चुनाव जीत जाता है। वह अब वैद्यजी की सत्ता को और अधिक मजबूत बनाता है। वह स्कूल की राजनीति में भी हस्तक्षेप करता है। स्कूल की भयानक गुटबाजी अब व्यक्तिगत लांछना पर उतर चुकी थी। खन्ना मास्टर पर चरित्रहीनता के आरोप लगाए गये थे। डिप्टी डायरेक्टर एजुकेशन का दौरा होने वाला था। लेकिन वह अंत तक नहीं आता है। अंत में वैद्यजी को ही निर्णय लेना पड़ता है। उनके निर्णय के अनुसार खन्ना मास्टर को स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। खन्ना मास्टर के पद के लिए रंगनाथ का नाम प्रिंसिपल प्रस्तावित करता है। इस प्रसंग में लोकतंत्र, शिक्षा, समाज, सत्ता, गाँव की भ्रष्ट होती मानसिकता को लेखक ने बखूबी उकेरने का प्रयत्न किया है।

बेला, रुपन और बंदी पहलवान के प्रसंग के द्वारा वर्चस्ववादी मानसिकता की व्यापकता को उठाया गया है। गाँव समाज में गयादीन जैसे धनवान किंतु निर्बल आदमी का इज्जत बचाना मुश्किल हो गया है। शिवपालगंज में राजनीति केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं थी अपितु व्यक्तिगत और निजी जीवन में भी उसका दुरुपयोग होने लगा। यह किसी भी सभ्य समाज के लिए शर्मनाक स्थिति है। उपन्यास के अंत में वैद्यजी की गुप्त कामना प्रकट होती है। वे स्वयं राजनीति से संन्यास लेकर बंदी पहलवान को सहकारी संघ के पद पर तथा रुपन बाबू को कॉलेज के मैनेजिंग का भार देना चाहते थे। अब वे इन दोनों अभिलाषाओं का भार बंदी पहलवान को ही सौंपने के लिए कृत संकल्प हैं। इस प्रकार से उपन्यास में पीढ़ी परिवर्तन होता है। यह देश की वंशवादी राजनीति का कठोर व्यंग्य ही नहीं कड़वी सच्चाई भी है।

महत्व

राग दरबारी का परिवेश ठेठ ग्रामीण नहीं है, बल्कि एक कस्बाई प्रकार का समाज है। उसकी समस्या यह है कि वह न पारंपरिक समाज रह गया है और न आधुनिक हो पाया है। इसलिए एक विचित्र प्रकार का अंतर्विरोध उस समाज में पैदा हो गया है। यही उपन्यास के व्यंग्य का भी मूलाधार है। व्यंग्य के कारण उपन्यास की मूल प्रकृति में संगठनहीनता का भाव पैदा हो गया है। इससे उपन्यास के कथ्य में ठोस वस्तु तथ्य नहीं उभर पाया है। वास्तव में घटना और परिस्थिति के द्वंद्वात्मक तनाव के अभाव ने उपन्यास के कलेवर को प्रभावित किया है। लेखक गंभीर से गंभीर बात को भी सहज मखौल बना देता है, यह वास्तविकता हमारी जिंदगी का अंग है। लेकिन इसे उपन्यास के पूरे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वह टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा हुआ प्रतीत होता है। उपन्यास पढ़ते हुए हमें स्थान-स्थान पर यह अनुभव होता है।

उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के विकास की अवधारणा को खंडित होता हुआ दिखाया गया है। स्वतंत्रता, लोकतंत्र, सहकारिता, पंचायत, आदि संस्थान भ्रष्ट लोगों के हाथ के कठपुतली बनकर रह गए हैं। सत्ता में दलाल किस्म के लोगों का बोलबाला है। वही सत्ता के नियामक और नियंता है, उसमें आम लोगों की भागीदारी नगण्य और न्यून है। व्यक्तिगत स्वार्थ का भाव राजनीति को इस तरह से प्रभावित करता है कि सभी संस्थानों पर वर्चस्व न केवल कुछ मुट्ठी भर लोगों का हो जाता है अपितु वे नैतिक ह्रास के शिकार होते हैं। शिवपालगंज का विद्यालय, पंचायत और सहकारी संस्था इसके गवाह हैं। कस्बे में राजनीति और अपराध के बीच एक साँठ-गाँठ है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के विघटन का संकेत है। लेखक राग दरबारी में इस विघटन के लिए जितना मठाधीशों को दोषी ठहराता है, उतना ही सामान्य जनता की मानसिकता की भी आलोचना करता है। सामान्य जन का गलत मूल्यों के खिलाफ लड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता है, उल्टे वे एक आरोपित मानसिकता के तहत इस प्रकार के कार्यों की सराहना करते हैं। उपन्यासकार की चिंता सत्ता की अमानवीयता को लेकर ही नहीं है, इससे अधिक चिंता इस बात की है कि सामान्य मनुष्य अन्याय को कितनी सहजता में स्वीकार करने का आदी होता जा रहा है। राग दरबारी का मौलिक महत्व इस प्रकार की मानसिकता को पहचानने में है।

राग दरबारी उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कई छोटे-छोटे प्रसंगों की भी योजना की गई है। इसमें रंगनाथ के बौद्धिक अनुभव, रूपन बाबू की आवेगमय प्रतिक्रिया, बंदी पहलवान का बाहुबल, लंगड़ की संघर्षशीलता, गयादीन की लाचारी, प्रिंसिपल साहब की स्वामिभक्ति के अतिरिक्त शराब, जुए, चोरी, डकैती, गंदगी, गरीबी और मक्कारी के अनेक प्रसंग उपन्यास में भरे पड़े हैं। ये हमारे सामाजिक जीवन की यथार्थता का प्रत्यक्ष अंकन करते हैं। उपन्यासकार ने जीवन की विषम और यथार्थ परिस्थिति को प्रहसनात्मक बनाकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास में कथ्य को जिन घटनाओं और पात्रों के बीच रचा गया है उसमें मानवीय करुणा और पीड़ा को उत्तेजित करने वाली चेतना का अभाव मिलता है।

भाषा शैली

हास्य और व्यंग्य के नये तेवर राग दरबारी उपन्यास में सर्वत्र दिखाई देते हैं। भाषा की यह व्यंजना संवेदना को अधिक विक्षुब्ध बनाती है। कहीं कहीं तो यह व्यंजना काव्यात्मक सौन्दर्य के स्तर तक पहुँच गई है। यह राग दरबारी उपन्यास की भाषा की शक्ति का प्रमाण है। उदाहरण के लिए उपन्यास के आरंभ में ही ट्रक का पूरा बिंब लोकतांत्रिक व्यवस्था की मूल्यविहीनता का संपूर्ण प्रतीक है। ग्रामीण और शहरी रिकशावाले हमारे सामाजिक जीवन दृष्टि के दो रूपों को प्रतिबिंबित करते हैं। इसी प्रकार गँजहापन एक विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली है। उसका भाषा प्रयोग, लोक व्यवहार और रिवाज अलग है। उसमें गाँव की मासूमियत और शहरी चतुराई का सुखद संयोग है। व्यावहारिक जीवन में कार्यों की अतार्किक परिणति से व्यंग्य की सृष्टि हुई है। व्यंग्य केवल पात्र, परिवेश और संस्थान के प्रति ही नहीं अपितु उससे जीवन पद्धति का भी अंतर्विरोध प्रकट हो गया है। छंगामल विद्यालय पर टिप्पणी करते हुए लेखक लिखता है "इन्हीं सब इमारतों के मिले-जुले रूप को छंगामल विद्यालय इण्टरमीजिएट कॉलेज शिवपालगंज कहा जाता था। यहाँ से इण्टरमीजिएट पास करने वाले लड़के सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते थे कि हम शातिनिकेतन से भी आगे हैं, हम असली भारतीय विद्यार्थी हैं, हम नहीं जानते कि बिजली क्या है, नल का पानी क्या है, पक्का फर्श किसको कहते हैं, सैनिटरी फिटिंग किस चिड़िया का नाम है। हमने विलायती तालीम तक देसी परंपरा में पायी है और इसलिए हमें देखो, हम आज भी उतने प्राकृत हैं। हमारे इतना पढ़ लेने पर भी हमारा पेशाब पेड़ के तने पर उतरता है, बंद कमरे में ऊपर चढ़ जाता है।"

जीवन और समाज की विश्वसनीय अभिव्यक्ति के लिए राग दरबारी की भाषा की भंगिमा पात्र, परिवेश और विषय वस्तु के अनुसार बदलती है। उदाहरण के लिए थाना और अदालत की भाषा में उर्दू मिश्रित शब्दों का प्रयोग मिलता है। चूँकि उत्तर भारत में कचहरियों में आज

| | | |
|---------------|---|--|
| कठिन शब्दावली | - | नकब |
| अभ्युदय | - | संघ मारना |
| अभ्युदय | - | भीड़भाड़ |
| कौशल | - | कराहना |
| इज्जत | - | न्यायालय में न्यायाधीशों की कार्यवाही |
| पन्ना | - | एक प्रकार की मशाल जिसमें तीन या पाँच बत्तियाँ एक साथ जलती हैं |
| टिनी-टनी | - | धक्का |
| कल्लायोगी | - | एक प्रकार की पीड़ा |
| तफरीह | - | मनबहलाव |
| कुकरुदाव | - | कुत्ते की तरह भूँकना |
| मुलजिम | - | अपराधी |
| मरखता बैल | - | मारने वाला बैल |
| बुरीकदार साफा | - | उजली पागड़ी |
| तखलिमा | - | एकान्त |
| तकली | - | वह धन जो गरीब खेतिहरों को बीज खरीदने या कुँआ बनाने के लिए दिया जाए |
| चकर चिली | - | चारों तरफ घूमना |
| दस्तयाबा | - | घात होना |
| साकिन | - | निवासी |

रागा दरबारी उपन्यास में जीवन की विविध स्थितियों पर व्यंग्य है। व्यंग्य जीवन और समाज को गहराई से निरीक्षण करने के बाद उपजता है। इसलिए व्यंग्य के भीतर की सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में अवश्य रखें। अनुभव, कार्य और विचार में सामानता नहीं होने के कारण जीवन में कई प्रकार अंतर्विरोध पैदा होते हैं। यह व्यंग्य के तैवर को धारदार बनाते हैं। इसलिए रागा दरबारी उपन्यास के संदर्भ में इन्हें भी पहचानने की ज़रूरत है। सत्ता को पाने के लिए किस प्रकार पुलिस अधिकाारी और स्थानीय नेता को बीच एक गठबंधन बनता है और फिर उसका किस प्रकार से दुरुपयोग किया जाता है इसे भी समझने का प्रयत्न कीजिए। उपन्यास में प्रतीक और बिंबों का भी प्रयोग मिलता है। इन प्रतीकों और बिंबों को समझने के साथ कथानक के प्रसंग में उसकी साधकता भी विचारणीय है।

उपन्यास कैसे पढ़ें

मनःस्थिति के लिए एक विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। बदल जाता है। सैक्स के विभिन्न प्रतीकों द्वारा लेखक ने रंगनाथ, रघुन और बैला की से संवाचित है। एक ही पात्र की मनःस्थिति के नाटकीय परिवर्तन से भाषा का लहजा भी प्रयोग करते हैं और सनीवर में निरीहता है। पात्रों में भाषा का यह अंतर सामाजिक पृष्ठभूमि औपचारिकता है, रंगनाथ की भाषा बौद्धिकता से संपन्न है, रघुन बाबू रोमांटिक भाषा का ही उपजी है। गूँजहा लोगों की भाषा में भ्रमरपन है, प्रिसिपल साहब वैद्य जी की भाषा में भाषा में अनुभव की विविधता है। यह विविधता समाज का गहराई से निरीक्षण करने के बाद भरे सामने लिखी गयी, इस पर भरे भरा दस्तखत भरे सामने ही हुआ। आदि। इस उपन्यास की जेवर भरे सामने से बरामद हुए, इन्हें भरे सामने मुहर बंद किया गया, बरामदगी की रिपोर्ट पूरा मुकदमा दोहरा दिया। बताया जागनाथ के घर की तलाशी भरी मौजूदगी में हुई, ये तीन भी उर्दू का प्रचलन व्यापक रूप से है। कानून की भाषा का उदाहरण - 'बैजनाथ ने सबूत का

| | | |
|---------|---|--|
| लियाँकत | - | सामर्थ्य |
| शिकमी | - | वह काश्तकार जिसे दूसरे से जोतने के लिए खेत मिला हो |
| चिकवे | - | मांस बेचने वाला |
| अहलकार | - | कर्मचारी |
| मजमून | - | लेख |
| सिरफिरे | - | पागल |
| भगल | - | वेश में |

व्याख्या के लिए अंश

1. लड़का वैसे ही खड़ा रहा। कुछ दिन पहले इस देश में यह शोर मचा था कि अपढ़ आदमी बिना सींग-पूँछ का जानवर होता है। उस हल्ले में अपढ़ आदमियों के बहुत से लड़कों ने देहात में हल और कुदालें छोड़ दीं और स्कूलों पर हमला बोल दिया। हजारों की तादाद में आये हुए ये लड़के स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटीयों को बुरी तरह से घेरे हुए थे। शिक्षा के मैदान में भम्भड़ मचा हुआ था। अब कोई यह प्रचार करता हुआ नहीं दीख पड़ता था कि अपढ़ आदमी जानवर की तरह है। बल्कि दबी जबान से यह कहा जाने लगा था कि ऊँची तालीम उन्हीं को लेनी चाहिए जो उसके लायक हो, इसके लिए 'स्क्रीनिंग' होनी चाहिए। इस तरह से घुमा-फिराकर इन देहाती लड़कों को फिर से हल की मूठ पकड़ाकर खेत में छोड़ देने की राय दी जा रही थी। पर हर साल फेल होकर, दर्जे में सब तरह की डाँट-फटकार झेलकर और खेती की महिमा पर नेताओं के निर्झरपंथी व्याख्यान सुनकर भी वे लड़के हल और कुदाल की दुनिया में वापस जाने को तैयार न थे। वे कनखजूरे की तरह स्कूल से चिपके हुए थे और किसी भी कीमत पर उससे चिपके रहना चाहते थे।
2. अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था, उन्होंने सुदूर-पूर्व में लड़ने के लिए बहुत से सिपाही भरती कराये। अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात वे अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य भरती करा देते थे। पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर, दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गाँव के जमींदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे। अब वे कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डाइरेक्टर और कॉलेज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में ज़िम्मेदारी के इन कामों को निभानेवाला कोई आदमी ही न था और वहाँ जितने नवयुवक थे, वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे, इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को सँभालना पड़ा था।
3. सब वर्गों की हँसी और ठहाके अलग-अलग होते हैं। कॉफी-हाउस में बैठे हुए साहित्यकारों का ठहाका कई जगहों से निकलता है, वह किसी के पेट की गहराई से निकलता है, किसी के गले से, किसी के मुँह से और उनमें से एकाध ऐसे भी रह जाते हैं जो सिर्फ सोचते हैं कि ठहाका लगाया क्यों गया है। डिनर के बाद कॉफी पीते हुए, छके हुए अफसरों का ठहाका दूसरी ही किस्म का होता है। वह ज्यादातर पेट की बड़ी ही अन्दरूनी गहराई से निकलता है। उस ठहाके के घनत्व का उनकी साधारण हँसी के साथ वही अनुपात बैठता है जो उनकी आमदनी का उनकी तनखाह से होता है। राजनीतिज्ञों का ठहाका सिर्फ मुँह के खोखल से निकलता है और उसके दो ही आयाम होते हैं, उसमें प्रायः गहराई नहीं होती। व्यापारियों का ठहाका होता ही नहीं है और

अगर होता भी है तो ऐसे सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में, कि पता लग जाता है, ये इनकम-टैक्स के डर से अपने ठाहके का स्टॉक बाहर नहीं निकालना चाहते। इन नौजवानों ने जो ठाहका लगाया था, वह सबसे अलग था। यह शोहदों का ठाहका था, जो आदमी के गले से निकलता है, पर जान पड़ता है, मुर्गों, गीदड़ों और घोड़ों के गले से निकला है।

4. यह सही है कि 'सत्य' 'अस्तित्व' आदि शब्दों के आते ही हमारा कथाकार चिल्ला उठता है, "सुनो भाइयों - यह किस्सा-कहानी रोककर मैं थोड़ी देर के लिए तुमको फिलासफी पढ़ाता हूँ, ताकि तुम्हें यकीन हो जाय कि वास्तव में मैं फिलासफर था, पर बचपन के कुसंग के कारण यह उपन्यास (या कविता) लिख रहा हूँ। इसलिए हे भाइयों, लो, यह सोलह-पेजी फिलासफी का लटका: और अगर मेरी किताब पढ़ते-पढ़ते तुम्हें भ्रम हो गया कि मुझे औरों-जैसी फिलासफी नहीं आती, तो उस भ्रम को इस भ्रम से काट दो।

तात्पर्य यह है, क्योंकि फिलासफी बघारना प्रत्येक कवि और कथाकार के लिए अपने-आपमें एक 'वैल्यू' है, क्योंकि मैं कथाकार हूँ, क्योंकि 'सत्य', 'अस्तित्व' आदि की तरह 'गुटबंदी' - जैसे एक महत्वपूर्ण शब्द का जिक्र आ चुका है, इसलिए सोलह पृष्ठ के लिए तो नहीं, पर एक-दो पृष्ठ के लिए अपनी कहानी रोककर मैं भी पाठकों से कहना चाहूँगा कि सुनो-सुनो हे भाइयो, वास्तव में तो मैं एक फिलासफर हूँ, पर बचपन के कुसंग के कारण.....

5. वेदान्त हमारी परम्परा है और चूँकि गुटबंदी का अर्थ वेदान्त से खींचा जा सकता है, इसलिए गुटबंदी भी हमारी परंपरा है, और दोनों हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं। आजादी मिलने के बाद हमने अपनी बहुत-सी सांस्कृतिक परम्पराओं को फिर से खोदकर निकाला है। तभी हम हवाई जहाज से यूरोप जाते हैं, पर यात्रा का प्रोग्राम ज्योतिषी से बनवाते हैं: फॉरिन ऐक्सचेंज और इन्कमटैक्स की दिक्कतें दूर करने के लिए बाबाओं का आशीर्वाद लेते हैं, स्कॉच व्हिस्की पीकर भगन्दर पालते हैं और इलाज के लिए योगाश्रमों में जाकर साँस फुलाते हैं, पेट सिकोड़ते हैं। उसी तरह विलायती तालीम में पाया हुआ जनतंत्र स्वीकार करते हैं और उसको चलाने के लिए अपनी परम्परागत गुटबन्दी का सहारा लेते हैं। हमारे इतिहास में-चाहे युद्धकाल रहा हो, या शान्तिकाल-राजमहलों से लेकर खलिहानों तक गुटबन्दी द्वारा 'मैं' को 'तू' और 'तू' को 'मैं' बनाने की शानदार परम्परा रही है। अंग्रेजी राज में अंग्रेजों को बाहर भगाने के झंझट में कुछ दिनों के लिए हम उसे भूल गये थे। आजादी मिलने के बाद अपनी और परम्पराओं के साथ इसको भी हमने बढ़ावा दिया है। अब हम गुटबन्दी को तू-तू, मैं-मैं, लात-जूता साहित्य और कला आदि सभी पद्धतियों से आगे बढ़ा रहे हैं। यह हमारी सांस्कृतिक आस्था है। यह वेदान्त को जन्म देनेवाले देश की उपलब्धि है। यही, संक्षेप में, गुटबन्दी का दर्शन, इतिहास और भूगोल है।

6. उन्होंने देखा कि प्रजातंत्र उनके तख्त के पास ज़मीन पर पंजों के बल बैठा है। उसने हाथ जोड़ रखे हैं। उसकी शक्ल हलवाहों - जैसी और अंग्रेजी तो अंग्रेजी, वह शुद्ध हिन्दी भी नहीं बोल पा रहा है। फिर भी वह गिड़गिड़ा रहा है और वैद्यजी उसका गिड़गिड़ाना सुन रहे हैं। वैद्यजी उसे बार-बार तख्त पर बैठने के लिए कहते हैं और समझाते हैं कि तुम गरीब हो तो क्या हुआ, हो तो हमारे रिश्तेदार ही, पर प्रजातंत्र उन्हें बार-बार हुजूर और सरकार कहकर पुकारता है। बहुत समझाने पर प्रजातंत्र उठकर उनके तख्त के कोने पर आ जाता है और जब उसे इतनी सान्त्वना मिल जाती है कि वह मुँह से कोई तुक बात निकाल सकें, तो वह वैद्यजी से प्रार्थना करता है मेरे कपड़े फट गये हैं, मैं नंगा हो रहा हूँ। इस हालत में मुझे किसी के सामने निकलते हुए शर्म लगती है, इसलिए, हे वैद्य महाराज, मुझे एक साफ-सुथरी धोती पहनने को दे दो।

7. हिन्दुस्तान में पढ़े-लिखे लोग कभी-कभी एक बीमारी के शिकार हो जाते हैं। उसका नाम 'क्राइसिस ऑफ कांशस' है। कुछ डॉक्टर उसी में 'क्राइसिस ऑफ फेथ' नाम की एक दूसरी बीमारी भी बारीकी से ढूँढ़ निकालते हैं। यह बीमारी पढ़े-लिखे लोगों में आमतौर से उन्हीं को सताती है जो अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं और जो वास्तव में बुद्धि के सहारे नहीं, बल्कि आहार-निद्रा-भय-मैथुन के सहारे जीवित रहते हैं (क्योंकि अकेली बुद्धि के सहारे जीना एक नामुमकिन बात है)। इस बीमारी में मरीज मानसिक तनाव और निराशावाद के हल्ले में लम्बे-लम्बे वक्तव्य देता है, जोर-जोर से बहस करता है, बुद्धिजीवी होने के कारण अपने बीमार और बीमार होने के कारण अपने को बुद्धिजीवी साबित करता है और अन्त में इस बीमारी का अन्त कॉफी-हाउस की बहसों में, शराब की बोतलों में आवारा औरतों की बाँहों में, सरकारी नौकरी में और कभी-कभी आत्महत्या में होता है।
8. रात के लगभग नौ बजे थे, पर कहीं खामोशी न थी। तहसील के सामने तम्बोली की दुकान पर बैटरीवाला रेडियो अब भी बज रहा था और फिल्मी गानों के परनाले से 'अरमान, साजना, हसीन, जादूगर, मंजिल, नज़र, तू कहाँ, सीना, गले लग जा, गले लग जा, मचल-मचलकर, आँधियाँ, ग़म, तमन्ना, परदेशी, शराब, मुस्कान, आग, जिन्दगी, मौत, बेरहम, तस्वीर, चाँदनी, आसमाँ, सुहाना सपन, जोबन, मस्ती, उभार, इन्तजार, बेजार, इसरार, इनकार, इकरार.....' जैसे शब्द लगातार गिर रहे थे जो भूखमरे देशों में नवजागरण का सन्देश देने के लिए सब प्रकार से उपयुक्त है। इस परनाले के गिरने की आवाज़ दूर-दूर तक फैल रही थी और इस पुलिया तक भी हवा का झोंका आ जाने पर पहुँच जाती थी। आसपास सियार बोल रहे थे और इससे प्रमाणित होता था कि उनमें सामूहिक रूप से रहने की शक्ति काफी मात्रा में मौजूद है और गाँव के आसपास सारा जंगल कट जाने के बावजूद - अपने देश में उखड़े हुए यहूदियों की तरह - वे कहीं बसने के लिए आन्दोलन-जैसा छेड़नेवाले हैं। पर इन आवाज़ों को दबा देनेवाली सबसे जोरदार आवाज़ उन टूकों की थी जो हॉर्न बजाते हुए सत्तर मील फी घण्टे की रफ़्तार से शहर की ओर भागे जा रहे थे।
9. उच्च स्तर के कई राजनीतिज्ञों और अधिकारियों को इस प्रकार परास्त करके अन्त में वे उस बंगले पर पहुँचे जहाँ से काऑपरेटिव-इन्स्पेक्टर की रक्षा का आदेश निकल रहा था। वहाँ उन्हें विदित हुआ कि सहकारिता-आन्दोलन में अब एक नये चिन्तन का संचार हुआ है जो भाई-भतीजावाद, जातिवाद, समाजवाद आदि उच्चवर्गीय सिद्धान्तों को एक में लपेटकर भविष्य के कार्यकर्ताओं की प्रेरणा का स्रोत होता। यह चिन्तन कुछ इस प्रकार का था: यदि तुम्हारे हाथ में शक्ति है तो उसका उपयोग प्रत्यक्ष रूप से उस शक्ति को बढ़ाने के लिए न करो। उसके द्वारा कुछ नयी और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो और उन्हें इतनी मजबूती दे दो कि वे आपस में एक-दूसरे से संघर्ष करती रहें। इस प्रकार तुम्हारी शक्ति सुरक्षित और सर्वोपरि रहेगी। यदि तुम केवल अपनी शक्ति के विकास की ही चेष्टा करते रहे और दूसरी परस्पर-विरोधी शक्तियों की सृष्टि, स्थिति और संहार के नियन्त्रक नहीं बने तो कुछ दिनों बाद कुछ शक्तियाँ किसी अज्ञात अप्रत्याशित कोण से उभरकर तुम पर हमला करेंगी और तुम्हारी शक्ति छिन्न-भिन्न कर देंगी।
10. वैद्यजी को तब बताया गया कि हमें जनता के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा न हुआ तो जनता का आचरण बिगड़ जायेगा। वह बिगड़ा तो पूरा देश बिगड़ेगा वर्तमान बिगड़ेगा और भविष्य बिगड़ेगा। राम ने क्या किया था? सीता का त्याग किया था कि नहीं तभी हम आज तक रामराज्य की याद करते हैं। त्याग द्वारा भोग करना चाहिए। यही हमारा आदर्श है। तेन त्यक्तेन भुंजी था' -कहा भी गया है। आज भी सभी यशस्वी नेता यही करते हैं, भोग करते हैं, फिर उसका त्याग करते हैं, फिर

त्याग द्वारा भोग करते हैं। अमुक वित्त-मंत्री ने क्या किया? त्यागपत्र दिया कि नहीं? अमुक रेल-मंत्री ने भी यही किया और अमुक सूचना-मंत्री ने भी यही किया। इस समय देश को, इस राज्य को, इस जिले को, इस काऑपरेटिव यूनियन को ऐसे ही त्याग की आवश्यकता है। आरोपों की खुली जाँच हो, इसके स्थान पर यह अधिक उत्तम है कि वैद्यजी जनता के सामने आदर्श उपस्थित कर दें। आदर्श की इमारत खड़ी करते ही सारे आरोप उसकी नींव के नीचे दब जायेंगे। अतः वैद्यजी को चाहिए कि वे मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद से त्यागपत्र दे दें। उनको विरुद्ध जो रिपोर्ट आयी है, उसका यही जवाब है। वे चाहें तो अपना त्यागपत्र किसी स्थिति के विरोध में दें, चाहे किसी सहकर्मी को कमीना बताकर दें, चाहे किसी सिद्धान्त की रक्षा के लिए दें। यदि वे त्यागपत्र दे रहे हों तो उसका कारण ढूँढने की उन्हें पूरी छूट रहेगी। पर त्यागपत्र के साथ अगर-मगर न होना चाहिए। होना चाहिए तो केवल त्यागपत्र होना चाहिए। नहीं तो कुछ न होना चाहिए। पर यदि कुछ हुआ, तो बहुत-कुछ हो जायेगा, जो कदाचित् वैद्यजी को अच्छा न लगेगा।

11. तुम मँझोली हैसियत के मनुष्य हो और मनुष्यता के कीचड़ में फँस गये हो। तुम्हारे चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़ है।

कीचड़ की चापलूसी मत करो। इस मुगालते में न रहो कि कीचड़ से कमल पैदा होता है। कीचड़ में कीचड़ ही पनपता है। वही फैलता है, वही उछलता है।

कीचड़ से बचो। यह जगह छोड़ो। यहाँ से पलायन करो।

वहाँ, जहाँ की रंगीन तसवीरें तुमने 'लुक' और 'लाइफ' में खोजकर देखी हैं; जहाँ के फूलों के मुकुट, गिटार और लड़कियाँ तुम्हारी आत्मा को हमेशा नये अन्वेषणों के लिए ललकारती हैं; जहाँ की हवा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, जहाँ रविशंकर-छाप संगीत और महर्षि-योगी-छाप अध्यात्म की चिरन्तन स्वप्निलता है...।

जाकर कहीं छिप जाओ। यहाँ से पलायन करो। यह जगह छोड़ो।

नौजवान डाक्टरों की तरह, इंजीनीयरों, वैज्ञानिकों, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए हुड़कने वाले मनीषियों की तरह, जिनका चौबीस घण्टे यही रोना है कि वहाँ सबने मिलकर उन्हें सुखी नहीं बनाया, पलायन करो। यहाँ के झंझटों में मत फँसो।

अगर तुम्हारी किस्मत ही फूटी हो, और तुम्हें यहीं रहना पड़े तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। उस दुनिया में रहो जिसमें बहुत-से बुद्धिजीवी आँख मूँदकर पड़े हैं। होटलों और क्लबों में। शराबखानों और कहवाघरों में, चण्डीगढ़-भोपाल-बंगलौर के नवनिर्मित भवनों में, पहाड़ी आरामगाहों में, जहाँ कभी न खत्म होने वाले सेमिनार चल रहे हैं। विदेशी मदद से बने हुए नये-नये शोध-संस्थानों में, जिनमें भारतीय प्रतिभा का निर्माण हो रहा है। चुरट के धुएँ, चमकीली जैकेटवाली किताब और गलत, किन्तु अनिवार्य अंग्रेजी की धुन्धवाले विश्वविद्यालयों में। वहीं कहीं जाकर जम जाओ, फिर वहीं जमे रहो।

यह न कर सको तो अतीत में जाकर छिप जाओ। कणाद, पतंजलि, गौतम में, अजन्ता एलोरा, ऐलिफेंटा में, कोणार्क और खजुराहो में, शाल-भंजिका-सुर-सुन्दरी-अलसकन्या के स्तनों में जप-तप-मन्त्र में, सन्त-समागम-ज्योतिष-सामुद्रिक में-जहाँ भी जगह मिले, जाकर छिप रहो।

भागो, भागो, भागो। यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।

व्याख्या के लिए निर्देश

तुम मँझोली हैसियत के.....यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।

राग दरबारी उपन्यास का टेक्सचर स्वातंत्र्योत्तर भारत के जटिल यथार्थ से बुना गया है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास रचना को सभ्यता समीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः राग दरबारी व्यवस्था के आंतरिक यथार्थ से परिचय करवाता है, जिसके अंतर्विरोध को देखकर व्यंग्य और विक्षोभ पैदा होता है। यह हमारे मूल्यों के क्षयग्रस्त होने को संकेत है। वस्तुतः यह उपन्यास चुनौतियों से घिरे समाज के उलझे हुए बौद्धिक विमर्श तथा सत्ता के अमानवीय और क्रूर चेहरे को पाठक के सामने रखता है।

व्याख्यांश का संदर्भ उपन्यास के अंतिम खंड पलायन से उद्धृत है। छंगामल विद्यालय में डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एजुकेशन आने वाले थे परंतु अन्य कार्यक्रम में व्यस्तता की वजह से नहीं आ सके। उनके दौरे का उद्देश्य शिक्षक के दो गुटों के राजनीतिक आरोप प्रत्यारोप के विषय में निरीक्षण करना था। उनके नहीं आने से विद्यालय के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति वैद्यजी अपना निर्णय सुनाते हैं। उनका निर्णय था कि खन्ना मास्टर को विद्यालय की नौकरी छोड़नी पड़ेगी। इस स्थान पर उपन्यास कथानक का संपूर्ण तनाव समाप्त हो जाता है। परंतु सत्ता के सामने एक व्यक्ति की निरीह विवशता सोचने के लिए बाध्य करती है। लेखक का निशाना रंगनाथ का व्यक्तित्व है, जो अन्याय को देखता हुआ चुपचाप रहता है। उसके जैसे लोगों के लिए ही लेखक इस प्रकार की टिप्पणी करता है।

मध्यवर्ग की विवशता और उसके छल को लेखक ने इन पंक्तियों में उधेड़कर रख दिया है। मध्यवर्ग अपनी सीमाओं के कारण एक संगठित संघर्ष नहीं कर सकता है और बिना इसके सामाजिक परिवर्तन का परिदृश्य उपस्थित नहीं हो सकता। लेखक का यह वक्तव्य कि कीचड़ में कीचड़ ही पैदा होते हैं, परिस्थिति की जटिलता को ही नहीं टूटी मनः स्थिति को भी प्रस्तुत करता है। यह निराशा और हताश की चरम स्थिति है। इसके लिए लेखक मध्यवर्ग को ही दोष देता है। वह उसकी अवसरवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है। जनजीवन से निरपेक्ष होकर कला अध्यात्म और बौद्धिक बहस करने के निरर्थक कार्य को भी लेखक आलोचना करता है। वास्तविकता से अलग हटकर स्वप्न की रंगीन दुनिया में मस्त रहने की रोमांटिक अनुभूति की वायवीयता से किसी समस्या का समाधान निकालने वाला नहीं है। वास्तविकता से पलायन स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्ग का निर्मम सत्य है। इसका प्रभाव संपूर्ण समाज पर पड़ा। मुठभेड़ से मुँह चुराने की नपुंसक प्रवृत्ति में दिनोंदिन बढ़ोतरी हुई है।

उपन्यासकार स्वातंत्र्योत्तर भारत के पढ़े लिखे लोगों की मनोवृत्ति से विक्षुब्ध है। उसमें सोचने और कार्य करने के बीच जो द्वैध मानसिकता मिलती है, वह अत्यंत ही निराशाजनक है। व्यंग्य के लहजे में लेखक ऐसे मनुष्य को जीवन की जटिलता से पलायन करने का संदेश देता है। दो प्रकार के अतिवाद में अपने जीवन का हल ढूँढना और विशिष्ट प्रकार के चमत्कार में विश्वास करना इस प्रकार के मनुष्य की नियति है। शोध, बौद्धिक, बहस, सेमिनार, अंग्रेजी के चमकीले जिल्दवाले किताब में रूचि इनकी पहचान है। वास्तव में सुविधाभोगी मानसिकता और जीवन के यथार्थ से बचने के लिए नये किस्म का तिलस्म पैदा करना धोखा और पाखंड है। उपन्यासकार इसे पहचानता ही नहीं इस पर आक्रमण भी करता है। लेखक दूसरी ओर अतीत पर प्रवचन देने वाले इंडोलोजिस्ट पर भी व्यंग्य करता है। षड दर्शन की परंपरा के कपिल कणाद आदि में रूचि रखना, अजंता, ऐलोरा, खजुराहों के रहस्य को सुलझाने में दिलचस्पी लेना, ज्योतिष और समुद्री विद्या की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा अच्छी बात है परंतु समकालीन जनजीवन को समझे बिना ये सब बौद्धिक छल के नमूने बनकर रह जायेंगे। इन विद्याओं में रूचि रखना लेखक के लिए यथार्थ से भागने का एक नया और असरदार तरीका है।

1. संपूर्ण अनुच्छेद में गहरी निराशापूर्ण मनःस्थिति का संकेत मिलता है।
 2. स्वांतन्त्र्योत्तर भारत के बुद्धिजीवी पर कड़ा व्यंग्य है।
 3. बुद्धिजीवी की अतिवादी मानसिकता की आलोचना की गई है।
 4. संपूर्ण अनुच्छेद में बुद्धिजीवी की मनोवृत्ति को एक पेरौडी के रूप प्रस्तुत किया गया है।
 5. भाषा में व्यंग्य की तीव्रता है।
-